अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-04, 1-15 अक्टूबर, 2016

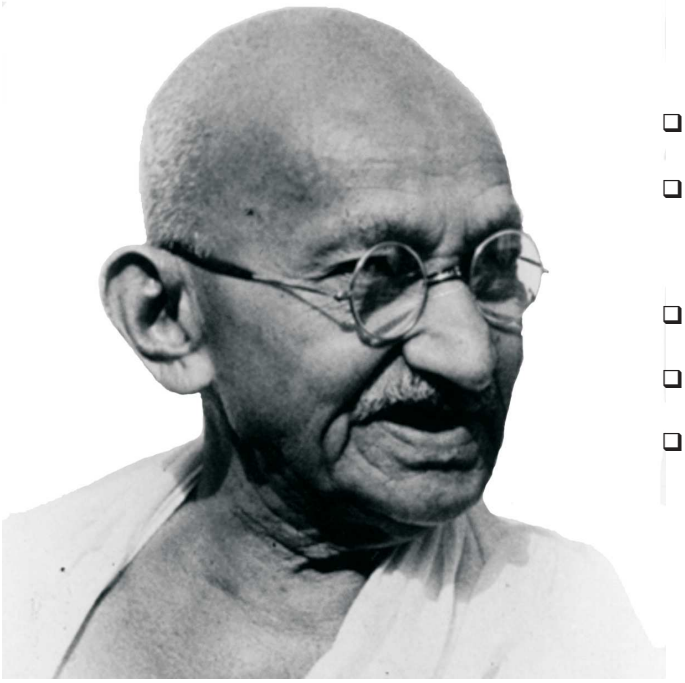

- प्राचीन संस्कृति का अभिप्राय
- गांधी-विचार का संदर्भहीन और कालबाह्य होना असंभव
- गांधी-जेपी की विरासत
- जेपी का अध्यात्म
- इतिहास की कसौटी पर जयप्रकाश संदर्भ आरएसएस का

''जयप्रकाश कोई साधारण कार्यकर्ता नहीं हैं। समाजवाद के तो वे एक प्रमाणभूत पंडित माने जाते हैं। उनके बारे में यह भी कहा जा सकता है कि समाजवाद के विषय में जयप्रकाश जो नहीं जानते उसे इस देश में दूसरा कोई नहीं जानता। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व समर्पित किया है।'' - महात्मा गांधी

गांधी-जेपी जयंती : शत्-शत् नमन!

''जिस समय देश के दूसरे राष्ट्रनेता राष्ट्र-निर्माण के लिए राजसत्ता पर ही भरोसा रख बैठे थे, उस समय गांधीजी अच्छी तरह जानते थे कि उनके सपनों का भारत अकेली एक सरकार के औजार की मदद से नहीं गढ़ा जा सकेगा।'' - जयप्रकाश नारायण

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 04, 1-15 अक्टूबर, 2016

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. गांधी-जेपी की विरासत... 2
2. प्राचीन संस्कृति का अभिप्राय... 3
3. मैं आज भी वैसा ही हूं... 6
4. सम्भव नहीं है गांधी-विचार का... 9
5. जेपी का अध्यात्म... 11
6. इतिहास की कसौटी पर जयप्रकाश... 14
7. जयप्रकाश का निश्चय... 17
8. गतिविधियां एवं समाचार... 18
9. सर्वोदय दैनन्दिनी : 2017... 19
10. कविताएं... 20

संपादकीय

गांधी-जेपी की विरासत

गांधी एवं जेपी दोनों क्रांतिनिष्ठ थे। गांधी ने अहिंसक क्रांति के सूत्र विकसित किये तथा उन्हें गुलामी से मुक्ति की लड़ाई से जोड़ दिया। प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक गुलामी से मुक्ति केवल पहला कदमा था। अव्यक्त, संस्थागत तथा मूल्यों में निहित गुलामी व हिंसा से मुक्ति, उस अहिंसक क्रांति का दूरगामी लक्ष्य था। गांधी द्वारा शुरू की गयी सतत अहिंसक क्रांति की विरासत को ही विनोबा व जेपी ने अपने-अपने समय में आगे बढ़ाया। इस प्रकार अहिंसक क्रांति की निरंतरता एवं काल सापेक्षता दोनों का दर्शन हमें होता है।

गांधीजी के काल में गुलामी का प्रत्यक्ष दर्शन उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद में होता था। स्वाभाविक था कि गुलामी से मुक्ति की लड़ाई का प्रथम कदम उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद को खत्म करना था। किन्तु गांधी तब भी गुलामी के सूक्ष्म तत्त्वों को खत्म करने की बात करते थे। गुलामी के सूक्ष्म तत्त्वों से मुक्ति का वाहक नैतिकता केन्द्रित व आत्मबलनिष्ठ लोकसत्ता ही हो सकती थी। अतः गांधी ने क्रांति के ऐसे वाहक के निर्माण में पूरी शक्ति लगा दी। सत्याग्रह व रचनात्मक कार्यक्रम एक ओर तथा लोकसत्ता के लिए लोकएकता दूसरी ओर—ये द्विविध आंदोलन वे निरंतर चलाते रहे।

उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद, काल प्रवाह में स्वयं पूंजीवादी विकास का वाहक था। वह पूंजीवादी विकास जो वैश्विक स्तर पर सभी संसाधनों के दोहन तथा वैश्विक स्तर पर श्रम के शोषण के माध्यम से दुनिया भर में गहरा होता जा रहा था। यह पूंजीवादी विकास नैतिकता व आत्मबल से च्युत महज भौतिकवादी स्वरूप केन्द्रित था। गुलामी के खिलाफ अहिंसक क्रांति का लक्ष्य इसी कारण संसाधनों के वैश्विक दोहन तथा श्रम के वैश्विक शोषण का भी निषेध मूलक था। स्वदेशी व शरीर श्रम निष्ठा के मूल्य उसी के विकल्प के वाहक थे। लोकसत्ता एवं लोक एकता के वाहक गांव ही हो सकते थे, इसी कारण ग्रामस्वराज्य व सर्वधर्म समभाव सूक्ष्म गुलामी से मुक्ति का माध्यम बनते चले गये।

जेपी का आंदोलन उस अहिंसक क्रांति यात्रा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी था। केन्द्रीय सत्ता का जनविरोधी होना तथा भ्रष्टाचार की गंगोत्री बन जाना, उस आंदोलन के तात्कालिक कारण बने। आंदोलन के दबाव में केन्द्रीकृत सत्ता का वास्तविक रूप प्रकट हो गया। आपातकाल लागू कर जनता के सभी अधिकार निरस्त कर दिये गये।

कागजों में लिखा औपचारिक लोकतंत्र भी एक झटके में धराशायी हो गया। यह स्पष्ट हो गया कि लोकतंत्र की जड़ें, संविधान या कानून से नहीं मजबूत होंगी। लोगों का संगठन तथा लोगों की शक्ति मजबूत करनी होगी। ये अकारण नहीं है कि संपूर्ण क्रांति आंदोलन के बाद, देशभर में सारे बड़े आंदोलन पार्टी दायरे के बाहर हुए। किन्तु लोक संगठन बनाने का काम फिर भी कमजोर रहा।

इस बीच पूंजीवादी बाजार का साम्राज्यवाद अपने नये संस्कारण के साथ, लगभग ई. सन् 1990 में दुनियाभर में अपनी पकड़ मजबूत करने लगा। राज्य की संप्रभुता से लोक की संप्रभुता की ओर बढ़ने के आंदोलन की हम बात ही कर रहे थे किन्तु पूंजी तथा पूंजीवादी बाजार के वैश्वीकरण के फलस्वरूप लोक के संप्रभुता की लड़ाई और कठिन हो गयी है। क्योंकि राजसत्ता ने न केवल राज्य की संप्रभुता का क्षरण होने जाने दिया है, बल्कि वह वैश्विक पूंजी व वैश्विक पूंजीवादी बाजार को विस्तारित करने में उसकी चेरी की तरह काम करना शुरू कर दिया। गांधी ने वैश्विक स्तर पर संसाधनों के दोहन के खिलाफ तथा वैश्विक स्तर पर श्रम के शोषण के खिलाफ जिस लड़ाई की शुरुआत की थी, उसे नये सिरे से परवान चढ़ाने की जरूरत है। ये अहिंसक क्रांति का तीसरा चरण होगा। गांधी, विनोबा और जेपी की विरासत को और आगे ले जाने का काम पूरी ताकत से शुरू करना होगा।

पूंजीवाद जब भी किसी नये चरण में प्रवेश करता है, वह लोक एकता को भी छिन्न-भिन्न करने का भी प्रयास करता है। इसीलिए गांधी-जेपी ने अपने आंदोलनों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष लोक एकता का निर्माण भी रखा था। नये चरण के आंदोलन को लोकनीति पर अडिग रहते हमें लोक-एकता खंडित करने वाली ताकतों से भी लड़ना होगा। गांधी जेपी की विरासत को मंचों पर ही नहीं, जमीनी लड़ाइयों में भी बढ़ाना होगा।

बिमल कुमार

इतिहास की कसौटी

प्राचीन संस्कृति का अभिप्राय

❑ महात्मा गांधी

''प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार की दुहाई देने वाले, अनेक व्यक्ति पुनरुद्धार की आड़ में, प्राचीन अंधविश्वासों और पूर्वाग्रहों को पुनः जीवित करने में भी कोई संकोच नहीं करते।''

आज शाम, भेंट किये गये आपके सुंदर मानपत्र के लिए, मैं आपका आभारी हूं। आपने कहा है, और ठीक ही कहा है कि इस सुंदर द्वीप में मुझे ले आने का श्रेय आपको ही है। पर आपको यह भी याद रखना चाहिए कि किसी काम का श्रेय लेने वालों को, कोई गड़बड़ी होने की हालत में, बदनामी भी, अपने ही सिर लेनी पड़ती है।

आज शाम यहां आपको कोई संदेश देना मेरे लिए थोड़ा कठिन है। इसलिए कि मुझे यह पता है कि यहां इस सभा में किन-किन वर्गों के लोग उपस्थित हैं; हां, आपके सुयोग्य अध्यक्ष ने, आपकी कांग्रेस के उद्देश्य, मुझे अवश्य बतला दिये हैं। इन उद्देश्यों के बारे में ही, मैं अपने कुछ विचार आपके सामने रखता हूं।

आपके अध्यक्ष की बात यदि मैंने ठीक-ठीक समझी है तो आपका प्रथम उद्देश्य प्राचीन संस्कृति का पुनरुद्धार करना है। तब फिर आपको समझना चाहिए कि प्राचीन संस्कृति आखिर है क्या? और फिर निश्चय ही, वह संस्कृति ऐसी होनी चाहिए, जिसका पुनरुद्धार करने के इच्छुक हिन्दू, ईसाई, बौद्ध या कहिए, हर धर्म और विश्वास के विद्यार्थी हों। यह इसलिए कि यहां मैं यह मानकर चलता हूं कि आप जब प्राचीन संस्कृति की बात कहते हैं तो आप केवल हिन्दू विद्यार्थियों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते। मैं यह मानकर चलता हूं कि इस छात्र-संघ में हिन्दू, ईसाई, मुसलमान और बौद्ध आदि सभी धर्मों के विद्यार्थी नहीं हैं, पर मेरे तर्क पर इस बात का कोई प्रभाव इसलिए नहीं पड़ता कि आपका चरम लक्ष्य तो सभी के लिए स्वराज हासिल करना है, जफना के हिन्दुओं और ईसाइयों-भर के लिए नहीं। आप तो इस द्वीप में बसने वाली समस्त जनता के लिए स्वराज चाहते हैं और जफना इसका एक हिस्सा ही है। इसलिए मैंने इन विभिन्न धर्मों के विद्यार्थियों को संघ में शामिल करने के बारे में जो बात कही है वह इस पर खरी उतरती है। अब इस स्थिति में हम अपना प्रश्न लें हम जिसका पुनरुद्धार करना चाहते हैं, वह प्राचीन संस्कृति आखिर है क्या? इससे स्पष्ट है कि वह एक ऐसी संस्कृति होनी चाहिए, जो इन सभी धर्मावलम्बियों की समान संस्कृति हो और जिसे ये सभी लोग स्वीकार करते हों। इसलिए निःसंदेह ही वह संस्कृति प्रधानतया तो हिन्दू संस्कृति ही होगी, लेकिन वह मात्र हिन्दू संस्कृति या विशुद्ध हिन्दू संस्कृति कदापि नहीं हो सकती। वह प्रधानतया हिन्दू संस्कृति होगी, ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूं कि प्राचीन संस्कृति का पुनरुद्धार करने के इच्छुक आप लोग प्रमुखतया हिन्दू ही हैं, और आपको सदा ही उस देश का ध्यान रहता है, जिसे आप गर्व के साथ अपनी मातृभूमि कहने में हर्ष महसूस करते हैं, और जो सर्वथा उचित है।

मैं यह कहने की धृष्टता करता हूं कि हिन्दू संस्कृति में बौद्ध संस्कृति भी आवश्यक रूप से सम्मिलित है। इसका सीधा-सा कारण यह है कि स्वयं बुद्ध एक भारतीय थे और भारतीय ही नहीं, वे हिन्दुओं में एक श्रेष्ठतम हिन्दू थे। गौतम के जीवन में मुझे ऐसी कोई बात नहीं मिली, जिसके आधार पर कहा जा सके कि उन्होंने हिन्दू-धर्म त्यागकर कोई अन्य धर्म अपना लिया था। मेरा काम और भी आसान हो जाता है, जब मैं सोचता हूं कि स्वयं ईसा भी तो एक एशियाई ही थे। इसलिए अब हमारे विचार के लिए प्रश्न यह होना चाहिए कि एशियाई संस्कृति या प्राचीन एशियाई संस्कृति क्या है। और इस तरह देखा जाए तो मुहम्मद भी तो एशियाई ही थे। चूंकि आप प्राचीन संस्कृति के उन सभी तत्त्वों या उपादानों का ही तो पुनरुद्धार करना चाहेंगे, जो उच्चादर्शपूर्ण हैं और जिनका स्थायी महत्त्व है; इसलिए आप किसी भी ऐसे उत्पादन का पुनरुद्धार तो कर ही नहीं सकते, जो इनमें से किसी भी धर्म के विरुद्ध पड़ता हो। अब प्रश्न यह बनता है : पता लगाया जाए कि वह कौन-सा तत्त्व या उपादान है जो इन सभी महान धर्मों में सर्वाधिक रूप से समान पाया जाता है। और इस प्रकार सभी उच्चादर्शपूर्ण उपादानों की विवेचना करने पर, आपको जो सर्वाधिक सहज और स्पष्ट उपादान मिलेगा, वह है सत्यवादिता और अहिंसा; इसलिए कि सत्य, निष्ठा और अहिंसा ही इन सभी महान धर्मों में समान रूप से मौजूद रही हैं।

जाहिर है कि आप उन अनेक रीति-रिवाजों का पुनरुद्धार तो नहीं ही चाहेंगे जिनको आप और हम अब कभी के भूल चुके हैं और जो कभी किसी समय में हिन्दू-धर्म में शामिल थे। *मुझे याद पड़ता है कि न्यायमूर्ति स्वर्गीय रानाडे ने प्राचीन संस्कृति के बारे में बोलते हुए एक अत्यन्त ही मूल्यवान विचार व्यक्त किया था। उन्होंने श्रोताओं से कहा था कि उनमें से किसी भी एक व्यक्ति के*

लिए यह बतलाना कठिन होगा कि प्राचीन संस्कृति का ठीक-ठीक रूप वास्तव में क्या था; और वह संस्कृति कब से प्राचीन न रहकर आधुनिक बनने लगी थी। उन्होंने यह भी कहा था कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति किसी भी चीज को केवल इसलिए प्रमाण नहीं मान लेगा कि वह प्राचीन है। संस्कृति प्राचीन हो या आधुनिक, उसे तर्क और अनुभव की कसौटी पर खरा तो उतरना ही चाहिए। मैं इस छात्र संघ के विद्यार्थियों को यह चेतावनी इसलिए दे रहा हूं क्योंकि वे देश के भाग्य-विधायक हैं और आज हमारे इस देश में ही नहीं बल्कि सारे संसार में, अनेक प्रतिक्रियावादी शक्तियां, हमारे चारों ओर सिर उठा रही है। भारत के अपने अनुभव से मैं कह सकता हूं कि प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार की दुहाई देने वाले, अनेक व्यक्ति पुनरुद्धार की आड़ में, प्राचीन अंधविश्वासों और पूर्वाग्रहों को पुनः जीवित करने में भी कोई संकोच नहीं करते।

मैं आपको अपने अनुभव की बात बतला रहा था। मैं बतला रहा था कि *हमारी मातृभूमि में ही कुछ प्रतिक्रियावादी शक्तियां सक्रिय हो गयी हैं। प्राचीन परंपराओं और प्राचीन नियमों के गड़े मुर्दे उखाड़कर, अस्पृश्यता की घृणित प्रथा का, औचित्य सिद्ध करने की कोशिश की जा रही है। आपको शायद मालूम हो कि ऐसा ही एक प्रयास अब देवदासियों की प्रथा का औचित्य ठहराने के लिए किया जा रहा है। मैंने आपको जो चेतावनी दी है कि प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के नाम पर, बहकावे में आकर आप गलत काम न करें, उससे आप ऐसा न समझे कि मैंने यों ही इतना लंबा भाषण दे डाला है। अब आप शायद समझ गए होंगे कि यह चेतावनी कितनी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह चेतावनी आपको एक ऐसा व्यक्ति दे रहा है, जो प्राचीन संस्कृति का मात्र प्रेमी ही नहीं, वह जीवन-भर इसी कोशिश में भरसक लगा रहा है कि प्राचीन संस्कृति के सभी उच्चादर्शपूर्ण और स्थाई महत्त्व के उपादानों को नया जीवन दिया जाए।* प्राचीन संस्कृति के छिपे हुए खजाने की खोज करते-करते ही, मुझे यह अनमोल रत्न, हाथ लगा है कि प्राचीन हिन्दू संस्कृति में जितना भी कुछ स्थाई महत्त्व का है, वह हमें ईसा, बुद्ध, मुहम्मद और जरथ्रुश्त के उपदेशों में भी समान रूप से मिलता है। इसीलिए मैंने अपने तई यह तरीका निकाल लिया है कि जब मुझे हिन्दू-धर्म में कोई ऐसी बात दिखाई पड़ती है, जिसके बारे में प्राचीन शास्त्रकार सहमत हैं, किन्तु जो मेरे ईसाई-बंधु या मेरे मुसलमान भाई को स्वीकार्य नहीं है, तब मुझे तत्काल उसकी प्राचीनता पर संदेह होने लगता है। इस प्रकार के विवेचन के फलस्वरूप ही मैं इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हमारे **इस विश्व में सबसे अधिक प्राचीन यदि कुछ है तो यही दो तत्त्व हैं–सत्य और अहिंसा।** मैंने सत्य और अहिंसा पर विचार करते-करते ही यह अनुभूति की है कि मुझे किसी भी उस प्राचीन प्रथा या रीति-रिवाज का पुनरुद्धार करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, जो हमारे वर्तमान आप चाहें तो कहिए आधुनिक जीवन से मेल न खाता हो। प्राचीन प्रथाएं या रीति-रिवाज अपने उस काल में सर्वथा उपयोगी और शायद नितांत आवश्यक भी रहे हों, जब उनको अपनाया गया था, परंतु हो सकता है कि आधुनिक युग की आवश्यकताओं से उनकी पटरी पूरी तरह न बैठी हो, भले ही वे सत्य और अहिंसा के प्रतिकूल न हों। अब आप खुद देख सकते हैं कि हम जिसे करुणानिधि, दयामय, क्षमाशील आदि नाम देते हैं, उसी ईश्वर के नाम पर बरकरार रखी जाने वाली अस्पृश्यता, देवदासी-प्रथा, शराबखोरी, पशु-बलि इत्यादि को जब हम एक ही झटके में, निर्ममता के साथ एक तरफ हटा देते हैं तो हमारे सामने का मार्ग कितना प्रशस्त, कितना निरापद बन जाता है। ये प्रथाएं हमारी नैतिकता की भावना को ठेस पहुंचाती हैं, इसलिए हम बिना हिचकिचाए तुरंत इनका परित्याग कर सकते हैं। इसका निषेधात्मक पहलू आपने देखा। इसका एक रचनात्मक पहलू भी है, जो उतना ही महत्त्व रखता है।

इसका रचनात्मक पहलू आपके सामने रखने के सिलसिले में, मैं अहिंसा के सिद्धांत के एक नितांत आवश्यक, सहज निष्कर्ष की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं। मैंने इसे अपने अत्यन्त ही प्रिय मित्रों, चेट्टिनाड के चंद बड़े ही कर्मठ समाज-सुधारकों के सामने पेश किया था। वह निष्कर्ष या तर्क यह है यदि हम अहिंसा का वरण करते हैं तो फिर हमको संसार की किसी भी ऐसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए जो निम्न-से-निम्न या हीन-से-हीन मनुष्य को सुलभ न हो। यदि यह प्रस्ताव तर्क सम्मत है और मैं दावे के साथ कहता हूं कि यह अहिंसा के सिद्धांत का एक बिलकुल सीधा सहज निष्कर्ष है और यदि आप इसे स्वीकार करते हैं और यह पूरे तौर पर तर्कसम्मत भी है, तो इससे एक यही सहज परिणाम निकलता है कि हमें संसार की किसी भी वस्तु के बदले अपनी प्राचीन काल की सरलता, अपनी सादगी को त्यागने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए। अब आप शायद समझ गये होंगे कि आधुनिकता की होड़ का मैं इतना डटकर विरोध क्यों करता हूं। *पाश्चात्य देशों से आधुनिकता की मोहक चकाचौंध ऐसी तड़ित-गति से कौंध कर आ रही है, लगता है, जैसे हम उसमें डूब जायेंगे, उसी के रंग में रँग जायेंगे। मैंने अपने लेखों में और अपने भाषणों में भी इस बात का हर जगह पूरा ध्यान रखा है कि पाश्चात्य देशों में अपनाये जाने वाले आधुनिक तरीकों, उनकी आवश्यकताओं और भौतिक सुख-सुविधाओं की बहुलता के तौर-तरीके में तथा गिर-शिखर पर दिये गये ईसा के उपदेश की सारभूत शिक्षाओं में भेद किया जाए और इन दोनों को एक ही समझने की गलती न की जाये।* मैंने इसलिए अपने भाषण के आरंभ में ही आपको इसका संकेत

दे दिया था कि मैं आगे क्या कहने जा रहा हूं। आरंभ में ही मैंने आपसे कहा था कि आखिर ईसा और मुहम्मद भी एशियाई ही थे। अमेरिका और इंग्लैंड तथा संसार के अन्य भागों में, आज जो कुछ भी हो रहा है, हमें ईसा के उपदेशों और उनके संदेश को उससे अलग समझना चाहिए और दोनों में स्पष्ट भेद करना चाहिए। मैं स्वयं भी दक्षिण अफ्रीका में अपने हजारों-लाखों ईसाई मित्रों के साथ रह चुका हूं और अब तो संपर्क का दायरा बढ़ जाने के कारण संसार-भर के ईसाइयों के साथ रहा हूं, (पर मैंने अपने आपको उस पाश्चात्य चकाचौंध से अछूता रखा है) तो आप हिन्दू और मुट्ठी भर बौद्ध लोग, अगर इतने भी बौद्ध यहां हैं, भी अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति सच्चे बने रहने का संकल्प करें और तथाकथित ईसाईयत के देश में आपके पास पहुंचने वाली इस मोहक चकाचौंध से कोई सरोकार न रखें। यदि आपमें अडिग आस्था हो; यदि आप अपनी आस्था को किसी भी तरह मंद न पड़ने देने के लिए प्रयत्नशील रहें, तो आप देखेंगे कि आपके ईसाई मित्र अपनी पाश्चात्य चकाचौंध लेकर भले ही आपके पास आयें, पर वे उसे त्याग देंगे और आपके सादगी के सिद्धांत के भक्त बन जायेंगे; क्योंकि इसी से उस निष्कर्ष की सच्चाई सिद्ध होगी, जो मैंने आप सबके सामने रखी है।

यदि आप मेरे सभी तर्कों को भलीभांति समझते गये हैं तो आपको मेरा संदेश, चरखे का अमिट संदेश, समझने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी। इसलिए कि *मुझे तो चरखे के पीछे ईश्वर का वरदहस्त दिखाई देता है, मुझे तो उसमें एक ऐसे त्राणकर्ता के दर्शन होते हैं, जो दीन-से-दीन जनों की आवश्यकताओं की हर समय पूर्ति कर सकता है। इसीलिए मैं केवल चरखे की बात सोचता हूं और इसी के बारे में भाषण देता घूमता हूं। और यदि आप मुझे दूसरी कोई ऐसी चीज बतला सकें जो हमें संसार के भूखे-नंगों के निकट पहुंचा दे, हमें एकदम भंगियों के स्तर पर ले जा सके, तो मैं अपना चरखा वापस ले लूंगा और आपकी बतलायी उस चीज या उस साधन को शिरोधार्य कर लूंगा।* आप शायद अब अच्छी तरह समझ गये होंगे कि मैं क्यों इतनी बेशर्मी से, हर दिन भिक्षा-पात्र लेकर, दर-दर भटकता फिरता हूं और हर आदमी से कहता हूं कि खुशी से जितना बन सके इसमें डाल दो। अब मैंने आपका काफी समय ले लिया है। अब आप ऊबने लगे होंगे। इसलिए मुझे अपना भाषण समाप्त करना चाहिए और इसकी त्रुटियों को ठीक करने का काम आप पर ही छोड़ देना चाहिए। मैं छात्रों के साथ कई अन्य विषयों पर भी बात करना चाहता हूं, क्योंकि उनको मुझ पर भरोसा है, लेकिन आज मुझे अधिक कुछ नहीं करना चाहिए।

आपने जितना कुछ किया है और आप जो कर रहे हैं, उस सबके लिए मैं समूचे हृदय से आपका आभारी हूं। मैं जब कोलम्बो में था, आपने मेरे पास एक मसविदा भेजा था; यदि आप सब उसी का पालन करें, उसी के अनुसार चलें तो वह सचमुच आपकी बहादुरी होगी। हां, उस मसविदे में एक अशुद्धि थी, जिसे मैं शुद्ध कर देना चाहता था, लेकिन यह अब किसी अन्य अवसर पर करूंगा। आपने जिस धैर्य के साथ मेरी सारी बातें सुनीं हैं, उसके लिए मैं आपका आभारी हूं। ❑

('छात्र-कांग्रेस की सभा, जफना में 26 नवंबर, 1927 का भाषण)

सर्वोदय का अर्थ

❑ विनोबा

सर्वोदय यानी सबका उदय। किसी का उदय और किसी का अस्त, ऐसी बात नहीं। सर्वोदय शब्द बहुत अच्छा है और गांधीजी ने ही उसे गढ़ा है। इसमें 'सर्वभूतहिते रताः' की कल्पना भरी है। 'बाइबिल' में भी यह विचार आता है। 'रस्किन' ने उसी का आधार लेकर अपनी 'अन्टु दिस लास्ट' पुस्तक लिखी है। उसका मतलब है कि पहले दर्जे वाले जितनी ही आखिरी दर्जेवाले की भी रक्षा। परमेश्वर के यहाँ 'हाथी को मन, तो चींटी को भी कन' मिलता ही है। सेवक को भी ऐसी ही दृष्टि रखनी चाहिए।

हरएक व्यक्ति दूसरे की फिक्र रखे और अपनी फिक्र भी ऐसी न रखे, जिससे दूसरे को तकलीफ हो। परिवार में भी यही चलता है। परिवार का यह न्याय समाज पर भी लागू करना कठिन नहीं, आसान होना चाहिए। इसी को 'सर्वोदय' कहते हैं।

सर्वोदय का यह एक बहुत ही सरल और स्पष्ट अर्थ है। हम जैसे-जैसे प्रयोग करते जायेंगे, वैसे ही वैसे उसके और भी अर्थ निकलेंगे। लेकिन यह उसका कम-से-कम अर्थ है। इससे यह प्रेरणा मिलती है कि हमें अपनी कमाई का खाना चाहिए, दूसरे की कमाई का नहीं खाना चाहिए। हमें अपना भार दूसरे पर न डालना चाहिए। दूसरे का धन किसी तरह हम ले लें, इसे अपनी कमाई नहीं कहा जा सकता। कमाई का अर्थ है प्रत्यक्ष उत्पादन। यदि हम इन नियमों का पालन करें, तो सर्वोदय-समाज का दुनिया में हो सकेगा।

एक छोटा-सा बच्चा भी सर्वोदय-समाज का सेवक बन सकता है, अगर वह दूसरे की सेवा करता और कुछ न कुछ पैदा करता हो।

दस्तावेज

मैं आज भी वैसा ही हूं

❑ महात्मा गांधी

गुजराती कवि और साहित्यकार तथा मुम्बई के एलफिन्स्टन कॉलेज के प्रोफेसर रहे श्री नरसिंहराव ने सन् 1920 में गांधीजी के नाम एक खुला पत्र लिखकर उनकी खूब बुराई की थी। उन्हें लगा था कि गांधीजी में जो सात्विक और धार्मिक भावना सन् 1915 में थी, वह अब नहीं बची है, अब तो वे राजनीति के सागर में गोते खाने लगे हैं और मोह में फंसते जा रहे हैं। उस पत्र को देखकर गांधीजी ने उन्हें जो उत्तर दिया था, उसे पढ़कर पता चल सकता है कि अपने प्रबल विरोधी को भी वे किस शांत भाव से, पर पूरी दृढ़ता से अपनी बात समझाते थे।

–कार्य. सं.

गुजरात के प्रसिद्ध नरसिंहराव ने जो खुला पत्र लिखा है, वह अनायास ही मेरी दृष्टि में आ गया। मुझे समाचार पत्र पढ़ने का समय कदाचित् ही मिल पता है और यात्रा के दौरान समाचार पत्र मिलते भी कभी-कभी ही हैं, इसलिए ऐसे लेखों को पढ़े बिना रह जाता हूं।

अगर मैं उपरोक्त पत्र न पढ़ता तो ठीक न होता। श्री नरसिंहराव ने बहुत ही प्रेमभाव और निर्मल हृदय से यह पत्र लिखा है। यह मैं साफ देख सकता हूं कि मेरी वर्तमान प्रवृत्ति से उन्हें दुख हुआ है। उनका पत्र पढ़कर दूसरों को भी उन्हीं जैसा लग सकता है। कुछ विस्तार के साथ कह कर भी अगर मैं इस दुख का निराकरण कर सकूं तो मुझे प्रसन्नता होगी। मैं पत्र का उत्तर देने का प्रयत्न करता हूं।

नरसिंहरावजी का पत्र इस एक मान्यता पर आधारित है कि जिस सात्विक और धार्मिक भावना के दर्शन उन्होंने मुझमें सन् 1915 में और उसके बाद भी किए थे, वह उन्हें आज दिखायी नहीं पड़ती। उनकी धारणा है कि आज मैं राजनीति के सागर में गोते खा रहा हूं और मोह में पड़ा हुआ हूं।

मेरी आत्मा कहती है कि मैं जैसा 1915 में था, वैसा ही आज भी हूं। मेरी धर्म और न्यायवृत्ति आज अधिक जागृत है।

मुझे आशंका है कि नरसिंहराव मेरे पहले के जीवन से अपरिचित हैं। मैंने अपना सारा जीवन राजनीति में ही व्यतीत किया है। मैं धार्मिक प्रवृत्ति को राजनीतिक प्रवृत्ति से भिन्न नहीं मानता। मैंने सदा राजनीति में धर्मवृत्ति का समावेश करने के गोखले के मंत्र को ठीक माना है और उस पर यथाशक्ति अमल किया है।

सरकार के विषय में मैं जिन विशेषणों का प्रयोग करता हूं, वैसे विशेषणों का प्रयोग मैंने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह युद्ध के समय किया था। मैंने कभी नहीं माना कि उनका उपयोग करते समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। कुछेक अंग्रेज मित्र अवश्य ऐसा मानते थे। उन्होंने अपनी इस मान्यता के लिए बाद में पश्चात्ताप किया। उनमें से नेटाल के एक स्वर्गीय श्री एस्कंब थे और दूसरे दक्षिण अफ्रीका के वर्तमान प्रधानमंत्री जनरल स्मट्स हैं।

'प्रेमल ज्योति' के भजन की झंकार आज भी मेरे कानों में गूंजती है। आज भी उसका आदेश मेरा लक्ष्य है। आज भी मैं प्रति क्षण ईश्वरीय प्रेरणा की याचना कर रहा हूं।

तथापि पाश्चात्य संस्कृति को भूल जाने की सलाह मैंने उस समय भी दी थी। इस संस्कृति के अनुकरण में हिन्दुस्तान का नाश मुझे सन् 1908 में स्पष्ट रूप से दिखायी दिया। अपनी इस मान्यता को सबसे पहले मैंने एक अंग्रेज रईस के सामने व्यक्त किया और जब मैं इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका वापस आ रहा था तब उसी वर्ष 'इंडियन ओपिनियन' में उसे प्रकाशित किया। अंत में वे लेख 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक के रूप में संग्रहीत हुए। मैं उसे अथवा उसके अनुवाद को श्री नरसिंहराव से पढ़ जाने की प्रार्थना करना चाहता हूं। उससे उन्हें मेरी आधुनिक प्रवृत्ति के संबंध में अधिक जानकारी मिल जाएगी।

लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के त्याग का अर्थ सब अंग्रेजी वस्तुओं का त्याग अथवा अंग्रेज जनता के प्रति द्वेषभाव मैंने कभी नहीं माना और आज भी नहीं मानता। मैं 'बाइबिल' का पुजारी हूं। यीशु द्वारा पर्वत पर दिया गया उपदेश मेरे लिए आज भी मंगलमय है। उसके मधुर वाक्य आज भी मेरे हृदय के संताप को शीतल कर सकते हैं। रस्किन और कार्लाइल के कितने ही लेखों को मैं आज भी प्रेमभाव से पढ़ता हूं। अनेक अंग्रेजी भजनों के सुर और उनकी कड़ियां आज भी मुझे अमृत-तुल्य लगती हैं। ऐसा होने पर भी पाश्चात्य पद्धति के त्याग को मैं इष्ट मानता हूं, धर्म समझता हूं।

पाश्चात्य संस्कृति अर्थात पश्चिम में मान्य आज के आदर्श और उन पर प्रतिष्ठित पाश्चात्य प्रवृत्तियां। पशुबल को प्रधान पद, धन को भगवान का ओहदा, ऐहिक सुख की प्राप्ति में समय का अपव्यय, अनेक प्रकार के दुनियावी भोगों को पाने के लिए अद्‌भुत साहस, यांत्रिक शक्ति को बढ़ाने के निमित्त मानसिक शक्तियों का असीमित प्रयोग, संहारक अस्त्रों को खोज निकालने में करोड़ रुपयों का खर्च और यूरोप से बाहर के राष्ट्रों की जनता को हीन समझना—इस संस्कृति को मैं सर्वथा त्याज्य मानता हूं।

यह सब होने के बावजूद मैं अंग्रेजी राज्य के आंचल को पकड़े हुए था क्योंकि मैंने भ्रांतिवश मान लिया था कि उसमें उपर्युक्त संस्कृति को खंडित करने का साहस है। अब मैं मानता हूं कि अंग्रेजी-राज्य में जितनी शैतानियत है, उतनी कदाचित जर्मनों में भी नहीं है। मेरी यह मान्यता गलत हो तो भी दोनों कम से कम एक जैसे तो अवश्य हैं।

तुलसीदास ने रावण-राज्य की जिन-जिन बुराइयों का वर्णन किया है, वे सबकी सब अंग्रेजी राज्य पर चरितार्थ होती हैं, इसी से मैं इसे रावण-राज्य कहता हूं। मेरे इस कथन में कोई रोष नहीं है, पुण्यप्रकोप भी नहीं है। यह तो शांतचित्त हो अच्छी तरह से सोच-विचार के बाद निकाला हुआ निष्कर्ष है। तथापि हरेक अंग्रेज अथवा अंग्रेज अधिकारी राक्षस है, मेरे कहने का आशय यह नहीं है। फिर भी हरेक अधिकारी राक्षसी तंत्र को चलाने वाला होने के कारण जाने-अनजाने अन्याय का, दगा का और अत्याचार का साधन बन जाता है। ऐसी मेरी मान्यता होने के बावजूद अगर मैं इसे छिपाता हूं तो कहा जायेगा कि मैंने सत्य का अनादर किया। चोर को चोर और पानी को पानी कहने में अविवेक नहीं है और न यह बैल हांकने वाले किसान द्वारा दी जाने वाली गाली के समान है। इसके विपरीत अगर यह बात शुद्ध मन से कही गयी हो तो यह प्रेम की सूचक हो सकती है।

यदि मैंने इस जीवन में किसी भी बात का पक्की दृढ़ता के साथ सेवन किया है तो वह है अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का। इन तीनों का पालन करना कितना कठिन है, इसे मेरी अंतरात्मा ही जानती है। और मेरी मान्यता है कि मैंने इन तीनों का कर्म और वचन से अच्छी तरह पालन किया है। मेरे मन में क्रोध का भाव कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा कहूं तो यह झूठ होगा; मन में विषय वासना नहीं जगी, ऐसा कहूं तो पापी बनता हूं; फिर भी मेरी मान्यता है कि अगर इन तीनों का मन, वचन और कर्म से सर्वांग पालन करने की पूरी-पूरी शक्ति मुझमें होती तो नरसिंहराव के मन में जो संशय हुआ, वह कदापि न होता। इतना करने के बाद भी मैं शपथपूर्वक कह सकता हूं कि मैं जनरल डायर का लेशमात्र भी बुरा नहीं चाहता, न उन्हें उपदेश देने की मुझे कोई इच्छा ही है। अगर वे बीमार पड़ जाएं तो मैं प्रेमपूर्वक उनकी तीमारदारी करूं। लेकिन अपने पैसे में से उन्हें पेंशन देकर उनके पाप में मैं कभी भी भागीदार नहीं बन सकता। उनका कृत्य पैशाचिक था, इस संबंध में मुझे जरा भी शंका नहीं है। उनके कृत्य को अंग्रेजों ने 'विचारदोष' मानकर उनके पाप को अपने ऊपर ओढ़ लिया है।

यीशु ने अपने युग को 'सर्पयुग' कहा था, सो कोई क्रोध में नहीं कहा था। जहां सच बोलते हुए सब लोग डरते थे, वहां यीशु ने सच बोलने का दायित्व अपने ऊपर लेकर स्पष्ट भाषा में हर तरह के दंभ, दर्प और झूठ का वर्णन करके निर्दोष व्यक्तियों को उनसे सावधान किया और उन्हें बचाया था। महात्मा बुद्ध जब भेड़ के बच्चे को अपने कंधे पर उठाकर उस जगह पहुंचे, जहां अत्याचारी ब्राह्मण पशुवश कर रहे थे, तब उन्होंने उन लोगों को जिस भाषा में संबोधित किया वह भाषा कोमल नहीं थी, फिर भी वह उनकी आत्मा के प्रेम से सराबोर थी। उनकी तुलना में मैं कौन हूं? तिसपर भी इसी जीवन में प्रेम की हद तक उनकी बराबरी करने की अभिलाषा रखता हूं। इसके लिए पाठक मुझे उद्धत मानेंगे। श्री नरसिंहराव के ही हमनाम गुजरात के नरसिंह मेहता मेरे परम आदर्श हैं। उनका प्रेम बुद्ध के प्रेम से कुछ कम नहीं था।

संभव है कि मैं भूल कर रहा हूं, अंग्रेजों के प्रति अन्याय कर रहा हूं। यह भी कि इतिहास को मैंने गलत समझा हो। लेकिन मेरी प्रवृत्ति वैर से भरी हुई है या वह कम धार्मिक है, यह बात कतई नहीं है। जो मित्र भ्रांति में पड़कर मेरी ओर से सफाई देना चाहते हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि पहले वे मुझे अच्छी तरह जान लें। मैं निर्मल बनने और रहने का प्रयत्न करता हूं; किन्तु भूल से भरा हूं और भूल सुधारने को तत्पर हूं। इस जगत में मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे मैं छिपाना चाहूं। जो विचार मुझे सूझते हैं उन्हें मैं तुरंत व्यक्त कर देता हूं। लेकिन मैं बहुत ज्यादा सोच-समझकर काम करने वाला होने के कारण एकाएक अपने मत को छोड़ नहीं सकता। कोई आश्चर्य नहीं कि इसके कारण मेरे साथी मुझे 'स्वेच्छाचारी' मानते हों। मैं 'स्वेच्छाचारी' नहीं हूं। स्वेच्छाचारी व्यक्ति दूसरों की सुनना ही नहीं चाहता। मुझे तो याद पड़ता है कि मैं बच्चों तक की भी बात सुनता हूं और उनसे मैंने बहुत सीखा है। मैंने अहीरों और किसानों से भी बहुत ज्ञान प्राप्त किया है।

मैंने ऊपर 'साथी' शब्द का प्रयोग किया है। ''मेरे अपने कोई अनुयायी नहीं हैं। मेरे विचारों के अनुयायी भले ही हों।'' मेरे इस कथन को श्री नरसिंहराव ने 'शब्दजाल' मानकर अनजाने ही मेरे साथ अन्याय किया है। मैंने किसी को धर्मगुरु का पद प्रदान नहीं किया और मैं खुद अपने को उस पद के योग्य नहीं समझता। जब तक मन, वचन और कर्म से यम-नियम आदि व्रतों का पूरी तरह से पालन करने की शक्ति मुझमें नहीं आती, तब तक मैं अनेक भूलें कर सकता हूं। ऐसा व्यक्ति किसी को शिष्य नहीं बना सकता। कुछ वर्ष पहले मैंने एक ही मित्र को, और वह भी उनके आग्रहवश ही, शिष्य बनाने की भूल की थी। उसमें मुझे धोखा खाना पड़ा। मेरा गुरुपन चल ही न सका। मेरी परीक्षा मिथ्या सिद्ध हुई।

इस युग में किसी को गुरु बनाने अथवा किसी का गुरु बनने की बात को मैं बहुत जोखिम की बात समझता हूं। गुरु में हम पूर्णता की कल्पना करते हैं। अपूर्ण मनुष्यों को गुरु बनाकर हम अनेक भूलों के शिकार बन जाते हैं। इसी से मैंने जानबूझ कर कहा

है कि *मेरे विचारों का अनुसरण करने वाले व्यक्ति मुझे पसंद हैं; अनुयायी मैं नहीं चाहता। विचारों का अनुसरण करने में ज्ञान की आवश्यकता है और मनुष्य का अनुसरण करने में श्रद्धा प्रधान है। मैं अपनी श्रद्धा-भक्ति नहीं चाहता। अपने विचारों के प्रति भक्ति अवश्य चाहता हूं। और वह तो ज्ञानपूर्वक ही हो सकती है।* तिस पर भी मैं जानता हूं कि फिलहाल अनेक लोग मुझ पर मोहित होने के कारण मेरे विचारों का अनुसरण करते हैं। उनके पापों को मैं अपने ऊपर नहीं ओढ़ता क्योंकि उन्हें मैं अपना अनुयायी नहीं मानता। अपने अनुयायी और अपने विचारों के अनुयायियों के बीच उतना ही फर्क है जितना एक व्यक्ति को मूर्ख कहने और उसके विचारों को मूर्खतापूर्ण कहने में है।

लेकिन श्री नरसिंहराव को मुझमें कुछ अन्य दोष भी नजर आए हैं जो गुरुओं में विशेष रूप से होते हैं। मैं चरण स्पर्श के सामने सत्याग्रह नहीं करता—उसकी निन्दा करने के बावजूद—लोगों को चरण स्पर्श करने देता हूं, यह क्या है? मैं विनयपूर्वक इन भाई को बताना चाहता हूं कि चरण स्पर्श सत्याग्रह का विषय नहीं है। इसके मूल में सीधे-सादे स्नेहशील किसानों को, जिन्हें हमेशा से चरण स्पर्श करने की आदत पड़ गयी है, एकाएक कौन समझा सकता है? मैं श्री नरसिंहराव को विश्वास दिलाता हूं कि चरण स्पर्श अथवा जयघोष से मैं बहुत घबराता हूं। भाई शौकत अली मुझे चरण स्पर्श रूपी प्रहारों से बचाने की हमेशा बहुत कोशिश करते हैं, बहुत सारे स्वयंसेवकों की भी यही कोशिश रहती है। लेकिन इससे मैं पूरी तरह से छुटकारा नहीं पा सका हूं। इसके विरुद्ध उपवास रखकर इसके विरुद्ध उपवास रखकर या मौनव्रत द्वारा सत्याग्रह करने की मेरी हिम्मत नहीं, इच्छा नहीं। जयघोष से मुझे इतनी अकुलाहट होती है कि मैं कई बार सचमुच अपने कानों में रुई देता हूं। पूजा से भ्रमित न होने और तिरस्कार से अपने कर्तव्य का त्याग न करने का मैं नरसिंहराव को विश्वास दिलाता हूं।

श्री नरसिंहराव ने मुझे बांदरा प्वाइंट पर अपने घर आने का आमंत्रण दिया है। मैं वहां केवल साधु पुरुष दयाराम गिदुमल से मिलने के लिए जाना चाहता था। उनके विषय में मैंने हैदराबाद में उनके परिवार के लोगों से कुछ बातें सुनी थीं। श्री नरसिंहराव ने उन्हें अपने घर में परम सम्मानित अतिथि के रूप में रखकर बहादुरी दिखाई है, उसके लिए वहां जाकर उन्हें बधाई देने का भी मेरा उद्देश्य था। अत्यधिक व्यस्त होने के करण मैं अपने इस उद्देश्य को पूरा न कर सका।

बांदरा प्वाइंट पर जाकर मुझे आश्वासन मिलेगा अथवा वहां मुझे 'प्रेमल ज्योति'—के विशेष रूप से दर्शन होंगे, ऐसी मुझे आशा नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व बांदरा में जाकर रहने का अवसर मुझे मिला था, लेकिन मैंने उसे जानबूझकर त्याग दिया था। *मुम्बई का कसाईघर बांदरा में है। मैं जब-जब बांदरा से होकर निकलता हूं, तब-तब वह कसाईघर मेरे हृदय को बेधता है। बांदरा में चाहे कितने ही सुंदर दृश्य क्यों न हों, वे सब मुझे निर्दोष पशुओं के रक्त से सने हुए जान पड़ते हैं। और इसी से वहां जाते हुए मेरी आत्मा दुखी होती है। ऐसा दूसरा स्थान कलकत्ता है, वहां रहना भी मुझे विषम लगता है। वहां हिन्दू धर्म के नाम पर असंख्य बकरों का कत्ल होता है। वह मुझसे सहन नहीं किया जाता।* तथापि मैं बांदरा जाने का प्रयत्न अवश्य करूंगा। लेकिन उद्देश्य तो अभी पहला ही रहेगा। और 'प्रेमल ज्योति' की झांकी तो मुझे जब वह निर्मल संयम से हृदय-मंदिर में विभूषित होती है, मिल ही जाती है और परम शांति प्रदान करती है। ❑

('गांधी द्वारा लिखित पत्र : नवजीवन, 29.12.1920)

मानव समाज की अमूल्य निधि

हम ऐसे युग में जी रहे हैं, जो अपनी पराजय को और अपनी नैतिक शिथिलता को जानता है; यह एक ऐसा युग है जिसमें प्राचीन निश्चित मूल्य टूट रहे हैं और परिचित प्रणालिकाएँ नष्ट-भ्रष्ट हो रही हैं। असहिष्णुता और कड़वाहट दिनोंदिन बढ़ रही हैं। नव-निर्माण की वह ज्योति, जिसने महान मानव समाज को प्रेरित किया था, आज मंद पड़ती जा रही है।

मानव-मन अपनी आश्चर्यकारी अद्‌भुतता और विविधता की बदौलत बुद्ध या गांधी अथवा नीरो या हिटलर जैसे परस्पर विरोधी नमूने उत्पन्न करता है। यह हमारे लिए गौरव की बात है कि इतिहास की एक सर्वोच्च विभूति महात्मा गांधी हमारे बीच रहे, हमारे बीच चले-फिरे, हमसे बोले और उन्होंने हमें सभ्य तथा सुसंस्कृत जीवन जीने की पद्धति सिखायी। जो मनुष्य बुरा नहीं करता, वह किसी से डरता नहीं। उसके पास छिपाने को कुछ नहीं होता, इसलिए वह निर्भय रहता है। वह हिम्मत के साथ हरएक आदमी के सामने देखता है। उसके कदम दृढ़ होते हैं। उसका शरीर सीधा तना हुआ रहता है। और उसके शब्द सरल और स्पष्ट होते हैं। प्लेटो ने सदियों पहले कहा था : "इस जगत में सदा ही ऐसे कुछ दिव्य प्रतिभावाले मनुष्य होते हैं, जिनका परिचय और सम्पर्क मानव-समाज की अमूल्य निधि होता है।

नयी दिल्ली, 15 अगस्त, 1958

–सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

विरासत

सम्भव नहीं है गांधी-विचार का संदर्भहीन व कालबाह्य होना

❑ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

एक बार मैंने अपने पिता दादा धर्माधिकारी से पूछा, आज गांधीजी होते तो क्या करते? दादा ने उत्तर दिया, ''मैं नहीं जानता कि वे क्या करते! लेकिन तुम हो तो क्या करते हो या कर सकते हो, इसके बारे में सोचो!'' गांधीजी के बाद समस्याओं का स्वरूप बदल गया है। गांधी का कोई 'वाद' या 'सम्प्रदाय' नहीं है, सिर्फ विचार-प्रवाह है। विचार हमेशा गतिशील और प्रवाहित होता रहता है। गांधी का विचार संदर्भहीन, कालबाह्य हो गया है, ऐसा मानने वालों की संख्या रोज बढ़ रही है और हम हैं जो विचार के बदले 'ग्रंथ प्रामाण्यवादी' और 'व्यक्ति प्रामाण्यवादी' बन रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि *जहां गांधीजी का खून होने के कारण विचार-प्रवाह रुका, वहीं से हमारे चिन्तन-मंथन की शुरुआत होनी चाहिए। आज चिन्तन की आवश्यकता अधिक है। गांधी का विचार गांधी के नाम से जाना जाता है, तो हम उस विचार को 'गांधी-विचार' और 'गांधीतर-विचार' की दृष्टि से देखते हैं। विचार, विचार है। वह अपौरुषेय होता है। विचार न गांधी का है, न मार्क्स का। विचार न समाजवादी होता है, न सर्वोदयवादी। विचार केवल विचार होता है। विचार मानवव्यापी होता है।* विचार में जब आग्रह और दुराग्रह आ जाता है, तब वह 'सम्प्रदाय' में परिणत हो जाता है और सम्प्रदाय में जब आवेश और उन्माद आ जाता है, तब वह 'वाद' में परिणत होता है। गांधी ने तो यह साफ कहा है कि गांधीवाद नाम की कोई चीज नहीं है। वैसा कोई उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत भी नहीं किया है। अतः हमारे मन में कोई आग्रह-दुराग्रह न हो, बल्कि निष्ठा भले हो। निष्ठा अलग वस्तु है और आग्रह अलग। गांधीजी ने हमें जो विचार दिया, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी वैचारिक भूमिका में भी अहिंसा है। दूसरों के विचारों का निराकरण करना है, दूसरे के विचारों को दुनिया में परास्त करना है और अपने विचार की प्रस्थापना करनी है, इस भूमिका को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। वैसे भी 'सत्य की खोज करना' यही गांधी की वृत्ति थी। जो 'सत्यनिष्ठ' होता है, वह उस आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालता है। उसका 'तत्त्वज्ञान' या 'वाद' नहीं हो सकता। वैसे भी 'तत्त्वज्ञान' या 'वाद' अनेक हो सकते हैं, लेकिन 'सत्य' तो अनेक नहीं हो सकते। वह तो एक ही हो सकता है। इसलिए एक तत्त्वज्ञ ने कहा है—"Philosophy is a route on many roads Leading from nowhere to noting." इसीलिए जो 'सत्यनिष्ठ' होता है वह 'तत्त्वज्ञाननिष्ठ' या 'वादनिष्ठ' हो ही नहीं सकता। शायद इसीलिए गांधी के मित्र पोलक ने गांधी के व्यक्तित्व के बारे में कहा है कि "His is an illusive personality." और, शायद इसीलिए स्वयं गांधी ने कहा था कि कई वर्ष पूर्व जो हमने विचार प्रदर्शित किया हो, वह अगर बाद में किये हुए विचारों से असंगत हो तो सांप्रत में या बाद में व्यक्त किये गये विचार को ही सही मानें। यही 'सत्यशोधक' की विशेषता होती है, जो हमें अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए। क्योंकि शुद्ध बुद्धि अनासक्त होती है, उसमें विनय और नम्रता भी होती है। दुर्भाग्य से आज भी गांधी के विचार उन्हीं के रहे, वह हमारे विचार नहीं बन पाये क्योंकि हमने स्वतंत्र चिन्तन ही छोड़ दिया है। यही असली शोकांतिका है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गांधी के जमाने में जो समस्याएं थीं, उससे कई गुना अधिक समस्याएं आज हमारे सामने प्रस्तुत हैं। इन समस्याओं के रेडिमेड नुक्से या उत्तर नहीं हो सकते। लेकिन 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है' कहने वाले गांधी की जीवन-साधना में से कुछ मार्गदर्शन अवश्य मिल सकता है। हमें उस पर आधारित नये रास्ते ढूंढ़ने होंगे और यह ध्यान में रखना होगा कि गलत या अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने की वृत्ति नहीं होगी तो तथाकथित रचनात्मक कार्य भी नपुंसक साबित होगा और जिस संघर्ष के बाद रचना करने की शक्ति नहीं होगी, वह संघर्ष भी 'नपुंसक' माना जायेगा। इसलिए हमें नई पगडंडियां निर्माण करनी होंगी। हम अगर 'लकीर के फकीर' ही बने रहेंगे, तो कुछ नहीं कर सकेंगे, क्योंकि नयी लड़ाइयां पुराने शस्त्रों से नहीं लड़ी जा सकतीं। पुराने शस्त्र कई बार म्यूजियम में रखने लायक ही बन जाते हैं।

'संस्कृति' या 'सभ्यता' का मतलब क्या है? दूसरे के जीवन में शामिल होना और दूसरे को अपने जीवन में शामिल करना। असली सभ्यता का अर्थ है 'जीवन की शुद्धि' और उससे जुड़ी 'समृद्धि'। वर्तमान सभ्यता भौतिक साधनों के अमर्यादित दोहन, श्रम के प्रति विमुखता और शोषण द्वारा प्राप्त समृद्धि पर आधारित है। गांधीजी के सत्याग्रह संग्राम से एक अभिनव मानवीय सभ्यता का उदय हुआ—'सत्याग्रही' खुद 'सत्याग्राही' यानी सत्यग्रहण करने वाला हो। गांधीजी की सभ्यता तथा संस्कृति की व्याख्या समझ लेने की आवश्यकता है। मनुष्य को कर्तव्य पालन का मार्ग दर्शाने वाली आचार-पद्धति यानी सभ्यता और संस्कृति। वासनाओं पर विजय पाना संयम। पुराने जमाने में कहा जाता था कि गांधी ने तीन 'ध' समाप्त किये—धर्म, धंधा और धन। बदले में तीन 'झ' दे गये—झंडा, झाड़ू और झोली। यही गांधी की

असली देन है। गांधी धर्मांधता, धन-शक्ति और बाजारवाद को समाप्त करना चाहते थे। इसलिए वे चाहते थे कि 'अन्त्योदय से सर्वोदय' हो। वर्तमान सभ्यता का यह उद्देश्य नहीं है और न ही उसकी वैसी आकांक्षा है। वह तो स्वार्थपरायण है और सोचती है कि सब अपने-अपने स्वार्थ का विचार करेंगे, तो उसके जोड़ से सबकी प्रगति होगी, सबका विकास होगा। 'सर्वोदय' होगा। यह 'अपसिद्धांत' है।

विज्ञान और वर्तमान सभ्यता ने जो अनिश्चितता पैदा की है, उस कारण हमें अतीन्द्रिय शक्ति की उत्कंठा है। इसके कारण सभ्यता पर एक के बाद एक संकट गहरा रहे हैं। व्यक्तिगत ही नहीं, सामाजिक संकट भी गहरा रहा है। इसका दर्शन जे. पी. को विनोबाजी के आंदोलन में दिखायी दिया। उसके बारे में जे. पी. कहते हैं, *''गांधीजी अहिंसा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाकर देश के नवनिर्माण के काम में उपयोग करना चाहते थे। लेकिन हमने उनके लिए वैसा अवसर रहने नहीं दिया। इसलिए यह काम विनोबाजी की तरफ आया। उन्होंने सामूहिक जीवन में अध्यात्मिक मूल्यों को प्रविष्ट कराने का एक अद्‌भुत प्रयत्न किया। नैतिक मूल्यों के आधार पर देश में नव-निर्माण का काम किस तरह किया जा सकता है, इसका जवाब हमें विनोबा के कार्यक्रमों में मिलता है।''*

स्वतंत्रता आंदोलन के नेता महात्मा गांधी या विनोबाजी किसी पद पर नहीं थे। वे जानते थे कि 'सत्ताकांक्षी' या 'सत्ताधारी' लोग कभी आमुलाग्र परिवर्तन नहीं चाहते, क्योंकि परिवर्तित समाज में उनका स्थान क्या होगा, इसकी गारण्टी नहीं होती, इसलिए गांधी हमेशा 'पद' या 'सत्ता' से दूर रहे। चाहे वह पद राजनैतिक हो या संस्था का! इतना ही नहीं, जिस आश्रम से गांधी आंदोलन या सत्याग्रह के लिए बाहर निकले, उस आश्रम में कभी वापस नहीं आये। उनका पूरा जीवन सत्ता और सम्पत्ति निरपेक्ष रहा। वैसा ही दूसरे क्रांति का 'लोकनायक' जयप्रकाशजी के जीवन में भी दिखायी देता है।

इस संदर्भ में जयप्रकाशजी ने जो विचार प्रकट किये थे, वे अपने आप में काफी मार्गदर्शक और मूल्यवान है। जयप्रकाशजी इस संदर्भ में कहते हैं, ''आज गांधीजी की बात का मर्म हमारी समझ में भलीभांति आ रहा है। जिस समय देश के दूसरे नेता राष्ट्र-निर्माण के लिए राजसत्ता पर ही भरोसा रखकर बैठे थे, उस समय गांधीजी अच्छी तरह जानते थे कि उनके सपनों का भारत अकेली एक सरकार के औजारों की मदद से नहीं गढ़ा जा सकेगा। देश के नव-निर्माण की दृष्टि से उन्होंने सत्ता के परंपरागत, जर्जरित और गये-गुजरे रास्ते को अपनाने के बदले हमें एक नया रास्ता सुझाया था।

उन दिनों तो इस घटना का महत्त्व मेरे ध्यान में बिलकुल ही नहीं आया, लेकिन आज मुझे लग रहा है कि सारी दुनिया के इतिहास में यह एक ही अनोखा उदाहरण है। दुनिया में बड़ी-बड़ी क्रांतियां हुई हैं। जब दुनिया की ये सारी क्रांतियां सफल हुईं, तो क्या हुआ? क्रांति का सबसे बड़ा नेता अपने देश के सबसे ऊंचे सिंहासन पर चढ़कर बैठ गया। अपनी क्रांति के उद्देश्यों को सिद्ध करने के लिए, परिवर्तन की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए और नये समाज का निर्माण करने के लिए, उनमें से हरएक ने सत्ता अपने हाथ में थाम ली। अमेरिका में जार्ज वाशिंग्टन ने यही किया। फ्रांस में एक के बाद एक नेता सत्ता अपने हाथ में लेता चला गया। रूस में लेनिन ने भी सत्ता स्वीकार की। चीन, तुर्किस्तान, अलजीरिया, क्यूबा आदि सब देशों में यही हुआ। अकेले गांधीजी ही एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने सत्ता अपने हाथ में नहीं ली।'' जयप्रकाशजी आगे कहते हैं—

''गांधीजी की यह बात हमें समझनी होगी और इस पर अमल भी करना होगा। इसके अलावा दूसरा कोई चारा नहीं है। गांधीजी के इस अंतिम संदेश को हमें इसी रूप में समझना होगा। उनके साथियों ने उनकी इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। *मुझे लगता है, गांधीजी द्वारा बताया गया मार्ग परंपरागत मार्ग से दरअसल इतना अलग था कि वह उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था, न वह उनके गले उतरा था और न उनके मन में बैठ ही पाया था। क्या किसी ने कहीं यह सुना है कि कोई सफलता प्राप्त क्रांतिकारी सत्ता से अलग रहकर अपनी क्रांति के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए आम लोगों के अंदर सोई पड़ी आत्मशक्ति को झकझोर कर जगाने के काम में जुट गया हो? वैसे देखा जाय, तो गांधीजी कोई संन्यासी नहीं थे। वे राजनीति से भी अलग नहीं रहते थे। पचीस सालों तक उन्होंने इस देश की राजनीति को अपनी अंगुलियों पर नचाया था, फिर भी जब स्वराज्य आया, तो उन्होंने सत्ता की तरफ झांककर देखा तक नहीं। यदि वे यह मानते होते कि सत्ता में जाने से राष्ट्र का उत्थान हो सकेगा, तो उन्होंने राज्य-सत्ता अपने हाथ में ली होती। इसके लिए उन्हें कौन रोक सकता था?* लेकिन गांधीजी ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने सारी दुनिया से अलग अपना रास्ता अपनाया। क्रांति के लिए गांधीजी की प्रक्रिया लोकशिक्षण, मत-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया थी।'' जिसे जयप्रकाशजी ने 'तीसरी शक्ति' कहा है। अंत में जेपी कहते हैं, ''इस प्रकार हमारी यह अभिनव सामाजिक क्रांति तीसरी शक्ति के आधार होगी। यह तीसरी शक्ति प्रेम, अहिंसा और करुणा की वह शक्ति है, जो हिंसा-शक्ति और दंड-शक्ति से निरपेक्ष एक स्वतंत्र लोक-शक्ति है।''

वैसे देखा जाय तो इस मामले में जेपी गांधी के 'सहप्रवासी' या 'हमसफर' थे। जेपी का कोई मकान नहीं था। उनकी पत्नी प्रभावतीजी के बदन पर कभी गहने नहीं दिखे। पटना में चरखा समिति के एक कमरे

...शेष पृष्ठ 13 पर

जेपी पुण्य-तिथि : 8 अक्टूबर पर विशेष

जेपी का अध्यात्म

❑ अशोक मोती

''या तो काम पूरा होगा या मेरी हड्डी गिरेगी'' के संकल्प के साथ जब जेपी प्रभावतीजी के साथ 1970 में मुजफ्फरपुर के मुसहरी के मोर्चे पर डटे हुए थे, उसी दौरान लंगट सिंह महाविद्यालय के मैदान में आयोजित सभा में उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बाद में सहरसा जिले के राघोपुर, जो 'ग्रामस्वराज्य' का सघन क्षेत्र था, (31 जनवरी 1974 को जहां क्षितिज पर जेपी ने क्रांति की चिंगारी देखी तथा कहा ''लगता है आज हम एक-दूसरे सन् 1942 के किनारे पर खड़े हैं। एक दूसरी क्रांति होने जा रही है...ये चिन्ह हैं आने वाली क्रांति के।'') यहां का निवासी होने तथा 1974 के बिहार आंदोलन में 'तरुण शांति सेना' एवं 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' के एक सिपाही के नाते जेपी के निकट रहने तथा उनकी सेवा करने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह ईश्वर की असीम कृपा है।

जेपी की सहजता, लोगों के दुख में उनकी करुणा, उनको भेजे गये हजारों-हजार पत्रों में लोगों की व्यक्त आस्था, जनता से आमने-सामने होने या विभिन्न सभाओं में देश की परिस्थितियों की चर्चा करते उनकी आंखों से टपकते आंसुओं का साक्षी रहा हूं। बर्बरता की लाठी खाये जेपी को मुर्च्छित होते, संघर्ष के मोर्चे पर कभी गंभीर सेनानायक के रूप में तो कभी 'चमचे गिर ही जाते हैं' जैसे जुमले से संघर्षपूर्ण माहौल को अत्यन्त सहज बनाने की उनकी कला भी देखी, युवाओं से भी अधिक स्फूर्ति में अपनी आयु एवं बीमारी के बावजूद पटना में चहारदीवारी को लांघते भी देखा और क्रांति की घोषणा करते सभाओं में हमारे गाये क्रांति गीतों से अपनी कुर्सी की बांहों पर ताल मिलाती उनकी उंगलियों को थिरकते भी देखी। जेपी के अभिनंदन में दो बजे रात तक भी इंतजार करते, हजारों-हजार नर-नारियों को उन पर फूल भी बरसाते देखा और अंततः भीष्म पितामह की तरह शरशय्या (डायलीसिस मशीन) पर उनकी पीड़ा भी देखी। किन्तु उनका कभी न चूकने वाला साहस जीवनपर्यंत कैसे बना रहा, समझ के बाहर ही रहा। कभी कट्टर मार्क्सवादी, क्रांतिकारी, प्रखर वक्ता, तत्त्ववेत्ता तो कभी राजनीति के भीष्म पितामह के साथ-साथ एक संत बने रहना उनके लिए कैसे सहज था? जेपी ने कैसे अपनी पीड़ा की परवाह किये बगैर लोकतंत्र की ताबूत पर ठोंकी कील-कांटों को चुन-चुन कर निकाल फेंकना अपने जीवन का ध्येय बना लिया था? कोई भी जोखिम उठा लेने, अपने निश्चय पर दृढ़ रहने और गलत मार्ग से सही मार्ग पर तुरंत आ जाने की कैसी विराट शक्ति थी उनके पास! लगता है जेपी को ऐसी विशेष शक्ति सहजीवन एवं एक प्राणी का दूसरे प्राणी के साथ जीने के धर्म (मानव धर्म) एवं आध्यात्मिक सिद्धांत जो उनके हृदय में बसा था, उससे मिलती थी। जब जेपी कम्युनिस्ट एवं नास्तिक थे, हिंसक क्रांति में विश्वास करते थे, उस समय भी उनके हृदय-कोश में मानवीय धर्म, नैतिकता, करुणा एवं प्रेम लबालब भरा था और संभवतः इसी कारण उन्हें नास्तिक से आस्तिक और हिंसा से अहिंसा का वरण कर सच्चा सत्याग्रही बनते देर न लगी।

''अध्यात्म के विषय में कुछ कहने का अधिकार मुझे तो नहीं है, फिर भी इतना कहूंगा कि यदि इसका अर्थ यह हो कि देश और जनता की वर्तमान समस्याओं के प्रति उदासीन रहा जाय, तो कम-से-कम मुझे अध्यात्म की यह परिभाषा मान्य नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जनता की वर्तमान स्थिति को सुधारना, उनकी गरीबी और गुलामी को दूर करना ही हमारे प्रथम आध्यात्मिक कर्तव्य हैं।''

एक निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भले ही जेपी ने हिंसा को ही कभी अपनी रणनीति को माकूल साधन स्वीकार किया हो, पर यह साधन उनके हृदय का स्वाभाविक एवं स्वीकृत-स्वर कभी नहीं रहा। जेपी की मार्क्स और लेनिन, गांधी और विनोबा या शहीद भगत सिंह सबों के प्रति सदैव समान श्रद्धा ही बनी रही। उन्होंने सबों के पवित्र उद्देश्य को ही अधिक महत्त्व दिया। 74 आंदोलन के दौरान 25 अप्रैल 1975 को कटिहार (बिहार) में, जहां इस पंक्ति का लेखक जेपी के साथ उपस्थित था, शहीद भगत सिंह की प्रतिमा का अनावरण एवं फिर पुष्पांजलि देते हुए जेपी द्वारा युवाओं का आह्वान बिहार आंदोलन की एक ऐतिहासिक एवं मार्मिक घटना है।

''संपूर्ण क्रांति जिंदाबाद, इंकलाब जिंदाबाद कहते हो। पिताजी कहेंगे तिलक लेंगे तो? घर में विद्रोह करना होगा। तुम्हारे पिताजी के पास सिलिंग से ज्यादा जमीन है—पचास बीघा। उनको कहना पड़ेगा कि गरीबों का हिस्सा है, उन्हें दे दीजिए। इसके लिए अनशन करना पड़ सकता है। यह हिम्मत करो तो भगत सिंह की पूजा करने के लिए अधिकार प्राप्त कर सकते हो। इतना भी त्याग बलिदान नहीं करोगे तो समाज क्या बदलेगा। समाज की व्यवस्था को बदलना है, ऊंच-नीच, जात-पात, छुआछूत यह सब है। बड़ा सड़ा-गला समाज है। बहुत बड़ा

ऑपरेशन मांगता है। सर्जन आप लोग हो। सच्च धर्म तो मानव धर्म है।'' इसी मानव धर्म के निर्वहन के लिए जेपी ने शिव की तरह पूरे संसार का हालाहल अपने भीतर उड़ेल कर पचा लिया।

अर्जुन की तीर की तरह उनकी दृष्टि जनोन्मुख बनी रही और अपने जीवन के सुख-दुख, यश-अपयश, मान-अपमान एवं यातनाओं को समान भाव से अपने हृदय में स्थापित ईश को समर्पित कर दिया।

राजनीति बनाम लोकनीति : जेपी मूलतः एक संत तथा कबीर की तरह फकीर थे जिन्हें लकीर का फकीर बनना कभी भाया नहीं। शोध की मंजिलों तक पहुंचने के लिए इतिहास के पन्नों पर न जाने कितनी नई लकीरें खींची। स्वतंत्रता आंदोलन, देश के विभाजन, विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओं पर उनकी पहल, समाजवादी आंदोलन, सर्वोदय आंदोलन और बिहार आंदोलन से संपूर्ण क्रांति तक के इतिहास पर यदि सूक्ष्म एवं गहरी दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि जयप्रकाश ने इतिहास के पन्नों पर कई नई लकीरें खींच कर कई सामांतर लकीरों को भी मिलाने का सफल पुरुषार्थ दिखाया और उससे आगे बढ़ने की शक्ति ग्रहण की। उनके हृदय की कोमलता उनकी कमजोरी नहीं शक्ति थी जो उनके लिए अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी चुनौती स्वीकार करना सहज बना देती थी। जेपी तत्त्ववेत्ता, राजनीतिज्ञ एवं संत सभी थे। जेपी के अध्यात्म का लक्ष्य व्यक्ति, समाज एवं लोकतंत्र व स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखना था। उनकी आध्यात्मिक क्रांति का लक्ष्य जीवन की वास्तविकताओं को अध्यात्म से, मानव क्रांति धर्म से जोड़ना था जिससे कि 'राजनीति', 'लोकनीति' बन जाय।

राजनीति बनाम धर्म : सर्वोदय के महान चिन्तक एवं कर्मयोगी धीरेन्द्र मजूमदार ने कहा, ''लोकतंत्र और समाजवाद कोई शुद्ध राजनीतिक तत्त्व नहीं है बल्कि उसका मूल तत्त्व आध्यात्मिक है।'' *आचार्य विनोबा* ने जेपी को संत और स्वयं को राजनीतिज्ञ कहा। *आचार्य रजनीश* ने अपने एक प्रवचन में विनोबा के इस कथन की पुष्टि की। कहा, *''सर्वोदय में दो संत हैं एक विनोबा और दूसरे जयप्रकाश। विनोबा भीतर से राजनीतिज्ञ ऊपर से संत और जयप्रकाश ऊपर से राजनीतिज्ञ और भीतर से संत।''* अस्तु गांधी, विनोबा और जयप्रकाश तीनों ने धर्मच्युत एवं नीतिविहीन राजनीति में मानवीय धर्म सम्मिलित करने का हर संभव प्रयास किया और ऐसा करके उन्होंने वस्तुतः भारतीय राजनीति एवं धर्म दोनों को परिष्कृत एवं उपकृत किया। इनके लिए उनकी मानवीय एवं आध्यात्मिक क्रांति में ध्यान का केन्द्र बिन्दु श्रीहीन अंतिम जन का ही चेहरा था।

द *एशियन ड्रामा* के लेखक विश्व-विख्यात अर्थशास्त्री एवं नोबेल पुरस्कार विजेता *प्रो. गुन्नार मिरडल* ने अपनी मूल पुस्तक 'अगेंस्ट द स्ट्रीम-क्रिटिकल एसेज इन इकोनोमिक्स' में भारत की परिस्थितियों में बदलाव के लिए गांधी जैसे एक आध्यात्मिक नेता की आवश्यकता बतलाते हुए लिखा, *''भारत की विकास संबंधी भयावह समस्याओं से जूझते हुए मुझे अक्सर ऐसा विश्वास होता है कि आज इस महान देश को जिस वस्तु की आवश्यकता है, जो विदेशी सहायता और चालू संकट का सामना करने के लिए नीतियों के दिन-प्रतिदिन के तालमेल से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है वह है ऐसे 'आध्यात्मिक नेता' की जो गांधी की महानता, प्रेम और निर्भयता के समीप हों। ऐसे नेता जो सभी देशभक्तों को अपने साथ लेकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं, प्रवृत्तियों तथा व्यवहारों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए राष्ट्र को झंकृत कर दे। हालांकि विलम्ब बहुत हो चुका है फिर भी अभी समय है और इसकी नितांत आवश्यकता है।''*

जेपी ने इसीलिए संपूर्ण क्रांति की अवधारणा पेश करते हुए अध्यात्म की महत्ता पर बल दिया और कहा, ''अध्यात्म बुढ़ापे की बूढ़भस नहीं है, वह तरुणाई की उत्तुंगतम उड़ान है।' संपूर्ण क्रांति के तहत होने वाली सांस्कृतिक क्रांति की चर्चा करते हुए कहा, ''वह ऐसी क्रांति होगी जिसमें भारत का अध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उतरेगा। तब व्यक्ति अपने हितों का दर्शन समूह के हितों में करने लगेगा।'' इस तरह राजनीति में रुचि के बावूद जेपी मूलतः एक आध्यात्मिक पुरुष थे, जैसा गांधी और विनोबा थे, जो भारतीय आध्यात्मिक नेता गांधी के सबसे समीप दिखते थे जिन्होंने पूरे देश में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए संपूर्ण क्रांति की अवधारणा दुनिया के सामने रखी तथा इसके लिए पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। राजनीति में गहरी रुचि रखने के बावजूद जेपी मूलतः एक क्रांतिकारी आध्यात्मिक महापुरुष थे और उनका अध्यात्म ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति थी। उनके अध्यात्म से राजनीति प्रभावित होती रही। उनके अध्यात्म पर राजनीति के विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे - 'चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटत रहत भुजंग।'

गांधी ने कहा, ''यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूं तो इसका केवल यही कारण है कि राजनीति हम सबको सर्प के घेरे की तरह घेरे हुए हैं जिसमें चाहे कोई कितनी भी चेष्टा करे, बाहर नहीं जा सकता। मैं उस सर्प से युद्ध करना चाहता हूं। मैं राजनीति में धर्म को सम्मिलित करने की चेष्टा कर रहा हूं।'' सांप के साथ लड़ाई में गांधी और विनोबा से जयप्रकाश बहुत आगे तक निकल सके क्योंकि वे सत्ता में न जाने के व्रत के साथ-साथ राजनीति की दांव-पेंच को अधिक बारीकी से (एक सपेरे की तरह) समझते थे और एक रणनीति के तहत राजनीति के सड़ांधमय उदर में प्रवेश कर उसकी आंत को बार-बार बाहर खींचकर निर्मल जलप्रवाह (जनप्रवाह) से साफ करने तथा शोध आधारित वैज्ञानिक उपचार करने का साहस करते थे। यही कारण है कि संपूर्ण क्रांति में जेपी ने *'आध्यात्मिक क्रांति'* को सर्वाधिक

तवज्जो दी, जिस एक क्रांति से संपूर्ण क्रांति बहुत हद तक लक्ष्य को प्राप्त कर लेती।

जेपी अपनी जीवनयात्रा में पड़ाव-दर-पड़ाव, मंजिल-दर-मंजिल आगे बढ़ते गये। उनके शोध की आखिरी मंजिल थी, 'जीते जी मृत्यु का दर्शन'। इस मंजिल को भी उन्होंने पा लिया था। शोध का निचोड़ था—''मृत्यु सचमुच बहुत फैसिनेटिंग है। यह कोई भयावह चीज नहीं।'' जेपी ने जीवन और मृत्यु के भेद को समाप्त कर दिया। उनकी मृत्यु इच्छा मृत्यु थी। संपूर्ण क्रांति के बिहार आंदोलन के गर्भ से पैदा हुई जनता पार्टी के विश्वासघात ने उन्हें बेचैन कर दिया था जैसे कांग्रेस के विश्वासघात ने गांधी को।

जनता पार्टी ने जो वादे किये थे वे तो पूरे नहीं हुए लेकिन जेपी ने अपने वादे पूरे किये। जनता पार्टी के चुनाव अभियान का गांधी मैदान, पटना में एक विशाल जनसभा को संबंधित करते हुए जेपी ने कहा था, मित्रो! अगर जनता पार्टी ने भी वैसा ही किया (कांग्रेस जैसा) तो जयप्रकाश जीवित नहीं बचेगा।' वह कथन सच साबित हुआ। जेपी ने देश की बलिवेदी पर अपने प्राण की आहुति चढ़ा दी। वरिष्ठ सर्वोदय चिन्तक दादा धर्माधिकारी के शब्दों में—''लोकनायक ने अपने जीवन का ही भोग चढ़ा दिया, कभी प्रसाद के लिए हाथ नहीं फैलाया।''

निःसंदेह गांधी के बाद जेपी ही ऐसे आध्यात्मिक नेता रहे, जो गांधी की महानता, प्रेम और निर्भयता के बहुत समीप थे।

संपूर्ण क्रांति के प्रणेता ऐसे महान क्रांतिकारी संत लोकनायक की जयंती एवं पुण्य तिथि पर हमारी सच्ची श्रद्धांजलि इस दिवस को एक *'संकल्प दिवस'* के रूप में उनके अध्यात्म की गंगा संपूर्ण क्रांति को जमीन पर उतारने की शपथ ही हो सकती है वरना दुनिया ऐसे आयोजनों को 'संपूर्ण क्रांति के सिपाहियों के कंधे पर संपूर्ण क्रांति की ताबूत की ही संज्ञा देगी। ❑

('सर्वोदय से संपूर्ण क्रांति : जयप्रकाश जन्मशती स्मरण' से)

... पृष्ठ 10 का शेष

में ही रहते थे। इतना ही नहीं, वैवाहिक ब्रह्मचर्य का प्रभावती और जेपी अनोखे प्रतीक थे। उनके जीवन का परमोच्च बिन्दु था, जब जेपी भूदान, ग्रामदान आंदोलन में शामिल हुए। और, उसके लिए जीवनदान किया, वे ग्राममूलक अहिंसक क्रांति के सिपाही बने। जेपी के 'संपूर्ण क्रांति' का स्वरूप अहिंसक रहा। संपूर्ण क्रांति के दरम्यान जो जुलूस निकाला गया था, उसका घोषवाक्य था—'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा!' इस अर्थ में गांधी और जेपी 'हमसफर' थे।

इसलिए दादा के शब्दों में कहें तो, ''जिनको कुछ करना नहीं होता है, उनका यह पेटेंट प्रश्न है कि 'क्या यह संभव है?' गांधी से पहले पूछते थे, क्या तलवार के बिना आजादी पाना संभव है? लेनिन से पूछते थे, क्या मजदूरों का राज संभव है? माओ से पूछते थे, क्या किसानों की क्रांति संभव है? असंभव, संभव हो जाता है। लेकिन इसके लिए कुछ सिरफिरे हुए लोगों की आवश्यकता होती है। कमेस्ट्री का एक प्रोफेसर था। उन्हें एक परीक्षण करना था। परीक्षण करते वक्त जान का खतरा होता है और अगर परीक्षण नहीं करता है तो विज्ञान की प्रगति रुक जाती है। ऐसे में वे क्या करें? अपने साथी से पूछा। साथी ने कहा, मैं भी कुछ नहीं कह सकता। तू अपने सीनियर से पूछ। अब सीनियर में एक सिफ्त होती है। उसमें ताकत कम होती है, हिकमत ज्यादा। तो उसने एक नुस्खा बता दिया। ''कोई मुश्किल काम करना हो तो ऐसे बेवकूफ को पकड़ो जिसको यह पता ही न हो कि यह काम मुश्किल है।'' वेनिजुएला का लिबरेटर था, सायमन बॉलिवर। उसने कहा अपने बारे में, इतिहास में तीन मूर्ख शिरोमणि हुए। एक ईसा, दूसरा शेखचिल्ली और तीसरा मैं। *भगवान की कृपा से 1920 के बाद हमारे देश में तीन मूर्ख शिरोमणि हुए। एक का नाम था मोहनदास करमचंद गांधी, जिसे यह पता ही नहीं था कि तलवार के बिना आजादी हासिल करना मुश्किल है। दूसरे का नाम है, विनोबा, जिसे यह पता ही नहीं था कि मांगने से जमीन मिलती नहीं और समझाने से कोई मालिकी छोड़ता नहीं। और तीसरा मूर्ख इन दोनों का उत्तराधिकारी जयप्रकाश नारायण था, जिसका संपूर्ण क्रांति का आंदोलन क्रांति का एक अनोखा चरण माना गया है।''* इसीलिए तो हम कहते हैं न, ''अंधेरे में त्रिविध प्रकाश, गांधी-विनोबा-जयप्रकाश।'' इनके प्रकाश में आने का साहस हम नहीं करते। यही तो असली शोकांतिका है। ❑

शोक-संवेदना

जमुई जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष एवं जुझारू कार्यकर्ता वसंत भाई का निधन 24 सितंबर, 2016 को रात्रि 9.30 बजे हृदयगति रुक जाने के कारण खादीग्राम, जमुई में हो गया। आप महिला कार्यकत्री उषाबहन के पति एवं आचार्य राममूर्ति के दामाद थे।आपके असामयिक निधन से सर्वोदय परिवार मर्माहत है।

ससेसं के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, सर्वोदय जगत के कार्य. संपादक अशोक मोती, प्रकाशन संयोजक अरविन्द अंजुम आदि सहित कई सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने गहरी संवेदना व्यक्त की है। **–स.ज.प्र.**

'सर्वोदय जगत' के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों की सुविधा की दृष्टि से पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ प्रकाशन की वेबसाइट

www.sssprakashan.com

पर उपलब्ध है। –का. सं.

जेपी जयंती : 11 अक्टूबर पर विशेष

इतिहास की कसौटी पर जयप्रकाश

❑ सच्चिदानंद

जेपी के सचिव रहे सच्चिदानंद जेपी को पूर्णता में समझने वालों में एक प्रमुख व्यक्ति थे। समाजवादी आंदोलन के बड़े प्रखर व जुझारू नेता रहे, जो भूदान आंदोलन में विनोबा के साथ आये। 'भूदान यज्ञ' पत्रिका का संपादन वर्षों किया और बाद में जेपी ने उन्हें विनोबा से मांगकर अपना सचिव बनाया, जो जेपी के देहावसान तक उनके साथ रहे और इस पंक्ति का लेखक जेपी सचिवालय में उनका सहयोगी रहा।
इस ऐतिहासिक आलेख में सच्चिदानंद ने न केवल जेपी को इतिहास की कसौटी पर परखने की कोशिश की है अपितु यहां जेपी पर आरएसएस जैसे फासीवादी संगठन को बढ़ावा देने के आरोप का विश्लेषण और खंडन भी किया है। **–कार्य. सं.**

जयप्रकाश जन्मशती के संदर्भ में जहां एक ओर सन् 1974 के आंदोलन की उपलब्धियों के मद्देनजर जेपी के नेतृत्व की सराहना की जा रही है, वहीं दूसरी ओर कहा जा रहा है कि जेपी ने ''जनान्दोलन की गंगा में नहलाकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे फासीवादी संगठन को लोकतांत्रिक वैधता प्रदान की।''

वास्तविकता यह है कि 1974 के बहुत पहले 1967 के चुनाव की पृष्ठभूमि में डॉ. राममनोहर लोहिया ने अपने गैर कांग्रेसवाद के दर्शन के तहत तमाम गैर कांग्रेसी दलों और संगठनों को एकजुट किया था। इस गठबंधन में भारतीय जनसंघ, जिसका वर्तमान रूप भारतीय जनता पार्टी है और जो आरएसएस की विचारधारा से प्रतिबद्ध राजनीतिक संगठन है, शामिल था और उसने कांग्रेस विरोधी अभियान में प्रमुख भूमिका निभायी थी। इस प्रकार जनांदोलन की गंगा में आरएसएस जैसे सम्प्रदायवादी संगठनों को नहलाने का श्रेय सर्वप्रथम लोहिया को जाता है। सन् 1967 के चुनाव में इस गठबंधन ने तमाम हिन्दी-भाषी राज्यों में कांग्रेस को पराजित किया और उन सभी राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनीं। बिहार में गैर कांग्रेसी दलों की जो सरकार बनी, उसमें संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी जिसका चुनाव में सबसे ज्यादा सीटें मिलीं थीं, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय जनसंघ शामिल थे। यहां तक कि राजा रामगढ़ की जनता पार्टी भी उसमें शामिल थी।

कुछ राज्यों में तो कांग्रेस का तख्ता पलट गया, लेकिन केन्द्र में कांग्रेस की सरकार बनी रही। लोहियाजी उसको भी गिराना चाहते थे। अगर कांग्रेस के कुछ सांसद अपनी पार्टी छोड़कर विपक्ष में शामिल हो जाते तो केन्द्र में भी मिली-जुली गैरकांग्रेसी सरकार बन सकती थी।

इस संबंध में लोहिया जी ने जेपी से विचार-विमर्श किया था। उनकी बातचीत का सारांश अपनी याददाश्त के आधार पर जेपी के ही शब्दों में, यहां अंकित कर रहा हूं।

डॉ. लोहिया ने जेपी से कहा—कांग्रेस के तख्ता-पलट का चक्र (सर्किल) पूरा नहीं हुआ है। वह पूरा तभी होगा जब केन्द्र में भी कांग्रेस का तख्ता पलट जाये और गैरकांग्रेसी दलों की मिलीजुली सरकार बन जाये। इस दिशा में कोशिश चल रही है।

इस पर जेपी ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा—केन्द्र में मिली-जुली सरकार टिकाऊ होगी क्या? भारत की देशभक्त जनता यह कभी नहीं चाहेगी कि केन्द्र में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति पैदा हो। इसलिए उसका समर्थन मिली-जुली सरकार के लिए नहीं मिल पायेगा। राष्ट्रीय विकल्प के तौर पर जब कोई एक दल केन्द्र में सत्ता सँभालने की स्थिति में हो, तभी वहां सत्ता-परिवर्तन किया जाना चाहिए।

जाहिर है कि जेपी ने लोहियाजी के विचार का समर्थन नहीं किया, और न कांग्रेस से निकल कर कोई सांसद विपक्ष में शामिल हुए। इसलिए इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार केन्द्र में कायम रह गयी। इंदिराजी ने विभिन्न राज्यों में बनी गैर-कांग्रेसी सरकारों को स्थिर रहने नहीं दिया। गैर-कांग्रेसी सरकारों में शामिल दलों के बीच जो मतभेद थे, उनके कारण प्रायः सभी गैर-कांग्रेसी सरकारें गिर गयीं या तो गिरा दी गयीं।

इसके बावजूद जेपी इस राय पर कायम रहे कि केन्द्र में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति पैदा नहीं होने देनी चाहिए। इसलिए कि उस दिशा में कोई कदम उठना देश-हित में नहीं होगा। 1977 में भी जेपी की यही राय थी। तभी उन्होंने लोकसभा के चुनाव की घोषणा होते ही जो पहला बयान जारी किया, उसमें कहा था कि 'आंदोलन-समर्थक प्रमुख दलों को एकजुट होकर एक पार्टी में शामिल हो जाना चाहिए। अगर उन्होंने एक पार्टी नहीं बनायी, तो मैं चुनाव में उनका समर्थन नहीं करूंगा।'' ऐसा उन्होंने क्यों कहा? क्योंकि वे मानते थे कि भारत की जनता केन्द्र में मिली-जुली सरकार का समर्थन नहीं करेगी। तानाशाही से मुक्ति पाने के लिए भी वे ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे, जिससे केन्द्र में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति पैदा हो।

यह बात दूसरी है कि जनता पार्टी केन्द्र में सत्तारूढ़ होने के बाद टूट गयी और मोरारजी देसाई की सरकार गिर गयी। उसके बाद चौधरी चरण सिंह ने इंदिरा गांधी की पार्टी के समर्थन से केन्द्र में सरकार बनायी। जनता पार्टी में टूट क्यों हुई, यह विवाद का विषय है। कहा जाता है कि जनता पार्टी परस्पर-विरोधी सिद्धांत वाले दलों का मोर्चा ही थी। सच पूछिये तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी अनेक दलों और गुटों का संयुक्त मोर्चा ही थी जिसने आजादी की लड़ाई का नेतृत्व किया और स्वराज्य-प्राप्ति के बाद इस देश को स्थिर शासन दिया। ऐसा इसलिए संभव

हुआ कि आजादी की लड़ाई में उन सभी दलों और गुटों में मिलजुल कर हिस्सा लिया था और त्याग-बलिदान किये थे। 1974-77 में जो दूसरी आजादी की लड़ाई हुई, उसमें वे सभी दल शामिल थे, जिन्होंने एकजुट होकर जनता पार्टी बनायी थी। जेपी को उम्मीद थी कि जनता पार्टी की सरकार स्थिर रहेगी, अगर नेहरू जैसे कोई सर्वमान्य नेता जनता पार्टी में होते, तो जनता पार्टी नहीं टूटती और उसकी सरकार स्थिर रहती। कांग्रेस के पास नेहरू जैसे करिश्माई नेता थे। इसलिए कांग्रेस का शासन स्थिर रहा। इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भी कांग्रेस का शासन स्थिर रहा। मिली-जुली सरकार भी स्थिर रह सकती है, अगर किसी सर्वमान्य नेता के हाथ में उसका नेतृत्व हो। प्रायः सब लोग मानने लगे हैं कि वर्तमान दौर मिली-जुली सरकारों का है। यह दौर कब तक जारी रहेगा, तब तो भविष्य बतायेगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वास्तविक शक्ति का स्रोत ढूंढ़ने के लिए हमें इतिहास में जाना होगा। 1967 में कांग्रेस-विरोध की गंगा में नहाकर जो पुण्य उसने अर्जित किया, वह गैरकांग्रेसी सरकारों के पतन के बाद ही क्षीण हो गया। 1974 के आंदोलन में शामिल होकर उन्होंने जो त्याग-बलिदान किये, उनके फलस्वरूप उन्हें लोकप्रियता जरूर हासिल हुई। लेकिन यह लोकप्रियता जनता पार्टी के विघटन के बाद कायम नहीं रह सकी। 1974 के जनांदोलन की गंगा में नहाने का पुण्य 1980 तक काफी क्षीण हो चुका था। 1984 के चुनाव में उसका लगभग सफाया हो गया। तब फिर आर. एस. एस. और भारतीय जनता पार्टी ने (जो भारतीय जनसंघ का द्वितीय अवतार थी और है) भगवान राम का स्मरण किया। इसलिए वर्तमान लोकप्रियता राम-कृपा से उन्हें हासिल हुई है।

यह भी स्मरणीय है कि 1989 के चुनाव के दौरान गैर-कांग्रेसी दलों का एक महागठबंधन बना था। उसमें कम से कम बारह पार्टियां शामिल हुई थीं। इस गठबंधन में भारतीय जनता पार्टी के साथ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, ने 'कामरेड' अटल बिहार बाजपेयी से हाथ मिलाया था। इस चुनाव के फलस्वरूप भारतीय जनता पार्टी लोकसभा में एक पार्टी बनकर सामने आयी। राजा विश्वनाथ प्रताप सिंह ने एक तरफ भाजपा का और दूसरी तरफ वामपंथी दलों का समर्थन हासिल कर सरकार बनायी। इस महागठबंधन से जुड़कर भाजपा ने जो लोकप्रियता हासिल की, उसके सहारे आज वह केन्द्रीय सत्ता के सिंहासन पर विराजमान है।

इसलिए अगर भाजपा तथा आर. एस. एस. जैसे फासीवादी संगठन की शक्ति बढ़ी है, तो इसके लिए वे सारे नेता जिम्मेदार हैं, जिन्होंने सत्ता हासिल करने के लिए संघ परिवार का समर्थन लिया और उनको अपने पुण्य का भागी बनाया। उनमें सबसे भिन्न जेपी ने सत्ता प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि तानाशाही सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए संघ परिवार को अपने आंदोलन में शामिल किया था और उनको 'डी-कम्युनलाइज' करने की कोशिश की थी।

फिर भी कुछ लोग जेपी के नेतृत्व को फासीवादी ताकतों के उभार के लिए जिम्मेदार बताते हैं। ऐसे लोगों ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास का गहराई से अध्ययन नहीं किया है। ऐतिहासिक शक्तियों के प्रभाव और उसके फलस्वरूप जो परिवर्तन हुए हैं और हो रहे हैं, उनकी सही समझ के आधार पर ही लोकनायक जेपी जैसे सर्वमान्य नेता के नेतृत्व और कृतित्व का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

यद्यपि जेपी गैर-कांग्रेसवाद या गैर-नेहरूवाद के समर्थक नहीं थे, लेकिन संसदीय लोकतंत्र के तहत एक सशक्त विरोधी दल बनाने की आवश्यकता पर वे हमेशा जोर देते रहे। दल और सत्ता की राजनीति अलग होने की घोषणा उन्होंने 1954 में की थी और अपना शेष जीवन सर्वोदयमूलक अहिंसक क्रांति में—जिसको उन्होंने 1974 में संपूर्ण क्रांति की संज्ञा दी, लगाने का संकल्प लिया था। फिर भी संसदीय राजनीति के तहत विपक्ष की भूमिका को उन्होंने कभी नजरअंदाज नहीं किया। 1957 के चुनाव में उन्होंने भारतीय मतदाताओं से अपील की थी कि वे विपक्ष को वोट देकर मजबूत बनायें। उनकी इस अपील पर जवाहरलाल नेहरू ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। लेकिन जेपी अपनी बात करते रहे। उन्होंने 1952 में लोकतांत्रिक समाजवादी विपक्ष के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभायी थी। लेकिन आगे चलकर समाजवादी आंदोलन में आपसी मतभेदों के कारण बिखराव की प्रक्रिया शुरू हो गयी जो कभी थमी नहीं। तभी भारतीय जनसंघ को हिन्दी-भाषी राज्यों में अपनी जड़ जमाने का अवसर मिल गया। केरल, जो कभी समाजवादियों का गढ़ माना जाता था, में साम्यवादियों का वर्चस्व कायम हो गया, और वही इतिहास में पहली बार कोई साम्यवादी दल चुनाव जीत सत्तारूढ़ हुआ। इसका मुख्य श्रेय ई. एम. एस. नम्बूदिरिपाद के नेतृत्व को है। अगर समाजवादी आंदोलन टूटता नहीं तो केरल में तथा अन्यत्र विपक्षी राजनीति में जो शून्य की स्थिति पैदा हुई, उसको भरने के लिए आगे चलकर अपनी जड़ जमाने का अवसर साम्यवादियों और सम्प्रदायवादियों को नहीं मिलता। कांग्रेस में नेहरू वंश का वर्चस्व आजादी की लड़ाई के दौरान ही कायम होने लगा था। सरदार पटेल का निधन 1950 में ही हो गया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति बनकर राष्ट्रपति-भवन में कैद हो गये। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भी कांग्रेस की राजनीति से हट गये। ऐसी स्थिति में जवाहर लाल नेहरू का एकछत्र राज कांग्रेस के अंदर और बाहर कायम हो गया। नेहरू लोकतंत्र के प्रति ईमानदार जरूर थे, लेकिन वे प्रधानमंत्री के पद रहते हुए विपक्ष को बढ़ने का अवसर नहीं दे सकते थे। दूसरी तरफ जेपी दलीय राजनीति से अलग रहकर केवल बयान दे सकते थे या मतदाताओं से विपक्ष को वोट देने के लिए अपील कर सकते थे। जब तक डॉ. लोहिया जीवित रहे (1968 में जिनका निधन हो

गया) उन्होंने विपक्ष को संगठित करने का अथक प्रयास किया। समाजवादी दलों को फिर से जोड़ने की कोशिश लोहिया और जेपी ने मिलकर की थी। लेकिन वे जुड़े नहीं। ऐसे में कांग्रेस के अधिनायकवादी होने से रोकने के लिए गैर-कांग्रेसवाद की विचारधारा उभर कर सामने आयी। डॉ. लोहिया ने इसको दर्शन का रूप दिया।

एक दशक बाद आज जेपी ने 1974 में संपूर्ण क्रांति का उद्घोष किया और उसको परिभाषित करते हुए कहा कि संपूर्ण क्रांति में लोहिया द्वारा परिकल्पित सप्तक्रांति के विचार भी निहित हैं। इस प्रकार एक नयी राजनीति का सूत्रपात जेपी ने किया। आपातकाल के दौरान उन्होंने तमाम आंदोलन-समर्थक दलों को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की। यहां तक कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को भी राष्ट्र दल में मिलाने का प्रयत्न उन्होंने किया। आपातकाल के दौरान जब आर. एस. एस. के प्रमुख नेता जे. पी. से मुम्बई में मिले, तो उन्होंने (जेपी ने) उनके सामने राष्ट्र सेवा दल और आर. एस. एस. को जोड़कर एक सशक्त लोकतंत्रवादी एवं परिवर्तनशील संगठन बनाने का सुझाव प्रस्तुत किया।

उस समय आर. एस. एस. के नेताओं ने जेपी के सुझाव के पक्ष में सिर हिलाया था। लेकिन वे इतनी दूर तक जाने के लिए तैयार नहीं थे। आर. एस. एस. के सर संघ संचालक स्व. देवरस से भी जेपी ने बार-बार कहा था कि वे हिन्दू राष्ट्र की बजाय भारतीय राष्ट्र की बात करें। जेपी का तर्क था कि जब जनसंघ के साथ 'भारतीय' विशेषण जुड़ा है तो जिस राष्ट्र का सेवक होने का दावा संघ करता है, उसको भारतीय शब्द से परहेज क्यों होना चाहिए? आर. एस. एस. के पास इस सवाल का कोई तर्कपूर्ण जवाब नहीं था। मेरा ख्याल है कि अगर दोहरी सदस्यता के सवाल पर जनता पार्टी टूटती नहीं तो जेपी आर. एस. एस. को एक गैर-साम्प्रदायिक संगठन में बदलने की कोशिश जारी रखते और उनकी यह कोशिश कामयाब होकर रहती।

आपातकाल के दौरान 1976 में जेपी ने बिहारवासियों को संबोधित करते हुए एक लंबी चिट्ठी लिखी थी। इस चिट्ठी में उन्होंने देश के सामने उपस्थित चुनौतियों का सामना हम कैसे करें, इस विषय पर अपनी राय जाहिर की थी। चिट्ठी में आर. एस. एस. के विचार, दर्शन और संगठन के स्वरूप की चर्चा करते हुए जेपी ने लिखा था, ''जहां तक आर. एस. एस. की बात है, यह ठीक है कि वर्षों पूर्व इस संगठन का मैं विरोधी था, और उसकी कठोर शब्दों में आलोचना किया करता था। परंतु दुनिया में कोई चीज अपरिवर्तनीय (स्टेटिक) नहीं है। संगठन के भी रूप और सिद्धांत बदलते हैं, और मैं मानता हूं कि अनुभवों से गुजरकर आर. एस. एस. भी बदला है और बदल रहा है। यह संगठन पहले जो भी रहा हो आज बिल्कुल वही नहीं है, जो पहले था। उनमें महात्मा गांधी भी हैं। आर. एस. एस. और जनसंघ पर सम्प्रदायवादी होने का आरोप लगाया जाता है अतः अपने संपूर्णक्रांति के आंदोलन में उन्हें शामिल कर मैंने उनको 'डी-कम्युनलाइज' करने, यानी असाम्प्रदायिक बनाने की कोशिश की है। इन दोनों जमातों के युवकों ने मुस्लिम छात्रों और युवकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया है और एक साथ काम करने के दौरान एक दूसरे की गलतफहमी दूर हुई है तथा पारस्परिक विश्वास बढ़ा है। सर्वधर्म-समभाव (जिसको अंग्रेजी में 'सेक्यूलरिज्म' कहते हैं) के आदर्श को इस आंदोलन की ओर से एक बड़ी देन मिली है, इसे कोई भी तटस्थ व्यक्ति स्वीकार करेगा। इस प्रकार जनसंघ और आर. एस. एस. को संपूर्णक्रांति के 'सेक्यूलर' आंदोलन में शरीक कर मैंने सेक्यूलरिज्म की बुनियाद को मजबूत बनाने का प्रयास किया है। सम्प्रदायवाद को मिटाने की जो कोशिशें अब तक हुई हैं, उनमें भिन्न मेरी यह कोशिश अधिक रचनात्मक है।''

यह चिट्ठी आपातकाल के दौरान (सितंबर 1976) में लिखी गयी थी। इसके तीन महीने बाद 18 जनवरी को लोकसभा के चुनाव की घोषणा की गयी लेकिन आपात स्थिति को समाप्त नहीं किया गया। सिर्फ उसमें थोड़ी ढील दी गयी, ताकि विपक्षी दल चुनाव के लिए प्रचार कर सकें और अखबारों में उनके नेताओं के बयान छप सकें। आपात स्थिति को जारी रखते हुए चुनाव कराने की योजना सत्तारूढ़ दल की सोची-समझी रणनीति का हिस्सा थी। इंदिराजी को उनके सलाहकारों ने तथा खुफिया विभाग के लोगों ने विश्वास दिलाया था कि चुनाव में उनकी विजय अवश्यंभावी है। इसलिए इंदिराजी ने अपनी अधिनायकवादी नीति-रीति के लिए जनादेश प्राप्त करने के उद्देश्य से चुनाव की घोषणा की थी। अगर 1977 में उनकी जीत हो जाती तो आपात स्थिति कायम रहती और समाचार-पत्रों पर सेंसरशिप भी लगी रहती। लेकिन राजनीतिक दृष्टि से प्रौढ़ भारत के मतदाताओं ने अपने मताधिकारी का प्रयोग सोच-समझकर किया और इंदिराजी का अधिनायकवादी तख्ता पलट दिया।

यह स्मरणीय है कि चुनाव की घोषणा होते ही जेपी ने एक बयान जारी कर कहा था कि यह चुनाव संघर्ष तानाशाही बनाम लोकशाही का संघर्ष है और इसमें लोकशाही समर्थक शक्तियों की विजय अवश्य होगी। उसी बयान में उन्होंने यह भी कहा कि ''अगर आंदोलन-समर्थक प्रमुख विपक्षी दलों ने मिलकर एक पार्टी नहीं बनायी तो मैं चुनाव में उनका समर्थन नहीं करूंगा।'' यह बयान जारी करने के पूर्व मैंने जेपी से पूछा था कि ''अगर प्रमुख विपक्षी दलों का एक पार्टी में विलय नहीं हुआ तो भी इंदिराजी की पार्टी को पराजित करने के लिए आपको चुनाव में उन दलों का समर्थन करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में आपके लिए यह कहना कहां तक उचित है कि आप उनका समर्थन नहीं करेंगे?'' जेपी मेरा प्रश्न सुनकर एक मिनट तक चुप रहे और फिर कहा, ''मैंने जो बयान दिया है, उसमें बदलाव करने की जरूरत नहीं है।'' यह जाहिर है कि जेपी का पुराना आत्मविश्वास लौट आया था। उनका यह पक्का विश्वास था कि उनका यह बयान पढ़कर प्रमुख विपक्षी दल एक पार्टी में

विलीन होने का निर्णय अविलंब करेंगे। और यही हुआ भी। मेरा ख्याल है कि अगर उस समय जेपी ने अपने बयान में यह जोड़ दिया होता कि आर. एस. एस. हिन्दू राष्ट्रवाद के दर्शन को तिलांजलि देकर भारतीय राष्ट्रवाद की बात करे और राष्ट्रसेवा दल में शामिल हो जाये, तो शायद उसके नेता इसके लिए भी तैयार हो जाते। परिस्थिति के दबाव के सामने उनको झुकना पड़ता। दुनिया में जो परिवर्तन होते हैं और व्यक्तियों एवं संगठनों के रूप और विचार बदलते हैं, उनके पीछे ऐतिहासिक परिस्थितियों का दबाव काम करता है। यह मार्क्सवादी चिन्तन है। इससे भिन्न गांधीवाद शांतिमय विचार-परिवर्तन में विश्वास करता है। गांधीजी ने तो इससे आगे बढ़कर हृदय-परिवर्तन की बात कही थी। जेपी मार्क्सवाद और गांधीवाद के समन्वय के हिमायती थे। उनकी विचारधारा मार्क्स के वैज्ञानिक और गांधी के आध्यात्मिक चिन्तन का समन्वित रूप है। वे परिस्थिति-जन्य दबाव और प्रेमपूर्वक समझाने-बुझाने की प्रक्रिया द्वारा अपने विरोधियों का विचार-परिवर्तन कर सकते थे। आर. एस. एस. को वे गांधीजी के तरीके से बदलना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में जो प्रयत्न किये, वे कहां तक सफल या विफल हुए, यह शोध का विषय है।

आर. एस. एस. के वर्तमान तेवर को देखते हुए लगता है कि उसके परम्परागत विचारों और आदर्शों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, और जेपी की तमाम कोशिशें विफल हुई। 1974 में संपूर्ण क्रांति आंदोलन के दबाव और जेपी की प्रेरणा से जो परिवर्तन का वातावरण बना था, वह 1977 में लुप्त हो गया। जनता पार्टी के एकीकरण की प्रक्रिया भी व्यक्तित्वों के टकराव के फलस्वरूप उलट कर विघटन की प्रक्रिया में बदल गयी। इसी में आत्मघाती घटकवाद का उदय हुआ और विभिन्न घटकों के बीच सत्ता का संघर्ष शुरू हो गया। क्रांति का ज्वार उतर कर भाटे में बदल गया और प्रति क्रांति का दौर शुरू हो गया। ऐसे में आर. एस. एस. या किसी अन्य संगठन की विचारधारा में परिवर्तन की उम्मीद नहीं की जा सकती थी।

संपूर्ण क्रांति के तहत सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति की कल्पना की गयी थी। यह क्रांति आगे नहीं बढ़ पायी। फलतः जाति वर्ण बनाम धर्म की भावना जनता पार्टी पर और उससे जुड़े तमाम संगठनों पर हावी हो गयी। बीमार जेपी मूकदर्शक बने रहे। जिन लोगों को उन्होंने सत्ता के सिंहासन पर बिठाया था, उन्होंने संपूर्ण क्रांति के आदर्श को अमल में लाने की बजाय उसके विपरीत दिशा में कदम बढ़ाया। जनता पार्टी के कुछ लोग जो अधिनायकवाद के विरुद्ध उठी लहर पर सवार होकर सत्तारूढ़ हुए थे, आपातकाल को अधिनायिका की उपासना में लग गये और उनसे वरदान प्राप्त कर उन्होंने उस बाग को उजाड़ दिया जिसमें लोकनायक के लोक-कल्याण के आदर्शों के फूल उगाने का सपना देखा था। इस प्रकार इतिहास का चक्र पीछे की ओर घूम गया और तब स्वयं इंदिरा गांधी ने सिंहासन पर आसन जमा लिया। अच्छा हुआ कि जेपी यह दिन देखने के लिए जीवित नहीं रहे।

आज उनकी जन्मशती के उपलक्ष्य में हम उनका स्मरण कर रहे हैं। लेकिन मुझे भय है कि 11 अक्टूबर 2002 के बाद उनके विस्मरण का युग प्रारम्भ हो जायेगा, और भावी पीढ़ी उनका स्मरण तब करेगी, जब ऐतिहासिक शक्तियां एक नये महाभारत के लिए जमीन तैयार करेंगी और व्यासदेव के शब्दों के युगपुरुष की यह वाणी मुखर होगी। 'युगधर्मस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।''

उस युग-पुरुष की जय हो! युग-धर्म की जय हो।!! ❑

('सर्वोदय से संपूर्ण क्रांति : जेपी जन्मशती स्मरण' से साभार)

जयप्रकाश का निश्चय

❑ रामवृक्ष बेनीपुरी

जिन दिनों जयप्रकाश मार्क्सवाद के क्लास चलाया करते थे, उन दिनों भी मैं कहा करता था—जयप्रकाश 90 फीसदी गांधीवादी हैं तो मित्रों को मालूम होता था, मैं बहकी बातें कर रहा हूं। जब उनकी 'अच्छाई की प्रेरणा' निकली, तो सब एक-दूसरे से कानाफूसी करने लगे। जयप्रकाशजी ने एक दिन मुझसे पूछा, आपकी क्या राय है? मैंने कहा, मैं जो कहा करता हूं उस पर आपने सही मात्र कर दिया है। वह हंस पड़े!

जिस दिन उन्होंने जीवन-दान की घोषणा की मैं उनके साथ ही ठहरा था। उन दिनों बड़े दुर्बल हो गये थे। मैंने कहा—मैं आपसे नाराज हूं। उन्होंने कहा—क्यों? मैंने कहा—जरा चेहरा तो आइने में देख लिया कीजिए। बोले—मधुमेह हो गया है। और क्या चला रहा है?—यह पूछते ही मुस्कुरा पड़े। वही मुस्कुराहट जो उनके मित्रों को मोहित करती रही है। इतने में किसी ने ही मेरे उस लेख की चर्चा चलायी जो 'भूदान यज्ञ बिहार' में छपा था। उस लेख में मैंने लिखा था—इस बोधगया में ही आज से ढाई हजार वर्ष पहले संसार के कल्याण के लिए एक रास्ता निकाला गया था। जो लोग यहां एकत्र हो रहें हैं क्या आज के संत्रस्त-विपन्न मानव के लिए कोई नया रास्ता बता सकेंगे? पढ़कर बोले, अच्छा लिखा हैं आपने! लेकिन उस अच्छा का क्या अर्थ, यह तो दूसरे दिन पता चला जब उन्होंने यह घोषणा की।

उस दिन की (19.4.54) की अपनी डायरी में मैंने लिखा—

मैं प्रायः कहा करता हूं, मैं कलाकार हूं, सद्गुणोपासक हूं, जयप्रकाश ही मेरी उपासना की मूर्ति हैं, जहां वह रहेंगे वहां मैं रहूंगा। सन् 34 से ही उनका साथ है। आज 20 वर्षों के बाद एक प्रश्न आया है—अब तुम कहां रहोगे बेनीपुरी?

बार-बार बच्चों की याद आती है—नाबालिगों की एक पूरी पलटन है मेरे साथ। क्या मैं जयप्रकाश की असि-धार पर चढ़ सकूंगा, चल सकूंगा! ❑

गतिविधियां एवं समाचार

सर्वोदय साहित्य भंडार का शुभारम्भ : विनोबा जयंती के अवसर पर 11 सितंबर 2016 को 'वाई' (सतारा, महाराष्ट्र) में 'सर्वोदय साहित्य भंडार' का उद्घाटन गांधी साहित्य के प्रचारक टी. के. सोमैय्या के हाथों हुआ। कोटेश्वर मंदिर के अहाते में यह भंडार है। इस कार्यक्रम में लेखक डॉ. देवदत्त दाभोलकर ने विनोबा की पुस्तक खरीदकर सर्वोदय साहित्य भंडार की शुरुआत की। नयी तालीम के अध्यक्ष डॉ. सुगन बरंठ, सेवाग्राम आश्रम के अध्यक्ष जयवंत मठकर, महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष सोमनाथ रोडे, सर्व सेवा संघ के महामंत्री शेख हुसैन, मुम्बई सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष जयंत दिवाण, साम्योग साधना के संपादक रमेश दाणे उपस्थित रहे।

विनोबा के वाई आगमन की शताब्दी शुरू है। वाई कृष्णा नदी के किनारे पर बसा हुआ धार्मिक स्थल है। वाई में विनोबाजी के दादाजी ने कोटेश्वर मंदिर बनवाया था। विनोबाजी के पिताजी नरहर भावे ने यह मंदिर अस्पृश्यों के लिए खुला किया। यह मंदिर सामाजिक सुधार का एक प्रमुख केन्द्र है। वर्ष 1917-18 में विनोबाजी इसी मंदिर में रहे। वेदों का अध्ययन किया और गांधीजी के सत्याग्रह आश्रम के तत्त्वों का प्रचार किया। इस मंदिर को एक ट्रस्ट का रूप दिया गया, विनोबाजी इस ट्रस्ट के संस्थापक ट्रस्टी थे।

विनोबाजी के वाई आगमन के शताब्दी वर्ष में विजय दिवाणी ने दो वर्ष वाई के लिए दिया है। उन्होंने एक लाख रुपये का सर्वोदय साहित्य उस इलाके में लोगों तक पहुंचाने का संकल्प किया है। कोटेश्वर मंदिर सर्वोदय का केन्द्र बने, यह उनकी कोशिश है। विजय दिवाण विनोबा जन्म-स्थान गागोदे गांव में बसे विनोबा आश्रम के साधक, लेखक एवं कवि हैं। **–जयन्त दिवाण**

आवश्यकता है सबके सहयोग व सबके सहभाग की

सर्व सेवा संघ प्रकाशन समिति की अपील

आप जानते ही हैं कि समाज-निर्माण की दृष्टि से गांधी-विचार के प्रचार-प्रसार के लिए सर्व सेवा संघ प्रकाशन की स्थापना की गयी है। अपने स्थापना के समय से लेकर आज तक प्रकाशन द्वारा हजारों पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। विचार, अध्यात्म एवं आरोग्य आदि से संबंधित इन पुस्तकों का मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को संयमित व मर्यादित करने में विशेष योगदान रहा है।

प्रकाशन विचार-प्रचार के अलावा **'न लाभ - न हानि'** के आधार पर एक आर्थिक कारोबार भी है, जिसपर वित्तीय नियम स्वाभाविक रूप से लागू होते हैं। अगर प्रकाशन उन वित्तीय नियमों व अनुशासन की अनदेखी करता है तो कारोबार के ठप हो जाने की आशंका बढ़ जाती है। प्रकाशन आज कुछ ऐसी ही अजीबो-गरीब परिस्थिति का सामना कर रहा है।

स्पष्ट रूप से कहा जाय तो हमारे बहुत से सुधि ग्राहक व वितरक साथी ऐसे हैं, जिन्होंने काफी पहले साहित्य तो मंगा लिया है, लेकिन उनका भुगतान आज तक लंबित है। धीरे-धीरे प्रकाशन की उधारी (लेनदारी) की रकम बढ़कर आज लाखों-लाख हो गयी है, जिससे प्रकाशन के दैनिक कार्य को भी सम्पन्न करने में काफी कठिनाई हो रहा है। अगर आपको प्रकाशन के वित्तीय संकट से रू-ब-रू करायें, तो दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि प्रकाशन की उधारी का भुगतान नहीं करने वालों में अधिकतम अपने ही परिवार के सर्वोदय साथी हैं। वर्तमान में प्रकाशन को इस विषम परिस्थिति से उबारने के लिए हमें बेपरवाही की इस मानसिकता से बाहर आना होगा।

अतः पुनः एक बार अपने साथियों से हम अपील करते हैं कि आप अपनी बकाया राशि का जल्द से जल्द भुगतान कर दें, क्योंकि वर्षों से आपका भुगतान न होने के कारण प्रकाशन का वित्तीय संकट बढ़ता ही जा रहा है।

आपको अगर अपनी उधारी रकम के संबंध में किसी भी प्रकार की कोई भी जानकारी चाहिए तो प्रकाशन के टेलीफोन नं. 0542-2440385 पर लेखाधिकारी से बातचीत कर प्राप्त कर सकते हैं।

प्रकाशन का सफल संचालन सामूहिक दायित्व है। इसके निर्वाह में सबके सहयोग और सबके सहभाग की आवश्यकता है। धन्यवाद! **–अरविन्द अंजुम, संयोजक**

विनोबा जयंती : संत विनोबा की 121वीं जयंती के अवसर पर 11 सितंबर, 2016 को विनोबा ज्ञान मंदिर, जयपुर में कार्यक्रम आयोजित कर निवाई (टोंक) क्षेत्र के अरनिया, भगवतपुरा और चुराड़ा विद्यालय में भाषण प्रतियोगिता करायी गयी और 9 छात्र-छात्राओं को पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। प्रतियोगिता में 6 छात्राएं एवं 3 छात्र थे। कार्यक्रम में कताई किया गया एवं विनोबा के जीवन पर प्रदर्शनी लगायी गयी।

प्रार्थना सभा की अध्यक्षता अ. भा. आदिम जाति सेवक संघ के अध्यक्ष बनवारीलाल गौड़ ने की। उन्होंने अपने उद्बोधन में विनोबाजी के जीवन पर प्रकाश डाला। वरिष्ठ रचनात्मक कार्यकर्ता रामवल्लभ अग्रवाल ने विनोबाजी के प्रयोगों के बारे में छात्र-छात्राओं को जानकारी दी। पी. ए. पटेल ने खेती और खादी के महत्त्व पर प्रकाश डाला। सवाई सिंह ने नशामुक्ति के लिए अपने छात्र जीवन में किये गये प्रयास की जानकारी देते हुए उस ओर पहल करने की प्रेरणा दी। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अमित कुमार ने किया।

–डॉ. अवध प्रसाद, मंत्री

सर्वोदय दैनन्दिनी 2017 : एक बहुमूल्य डायरी

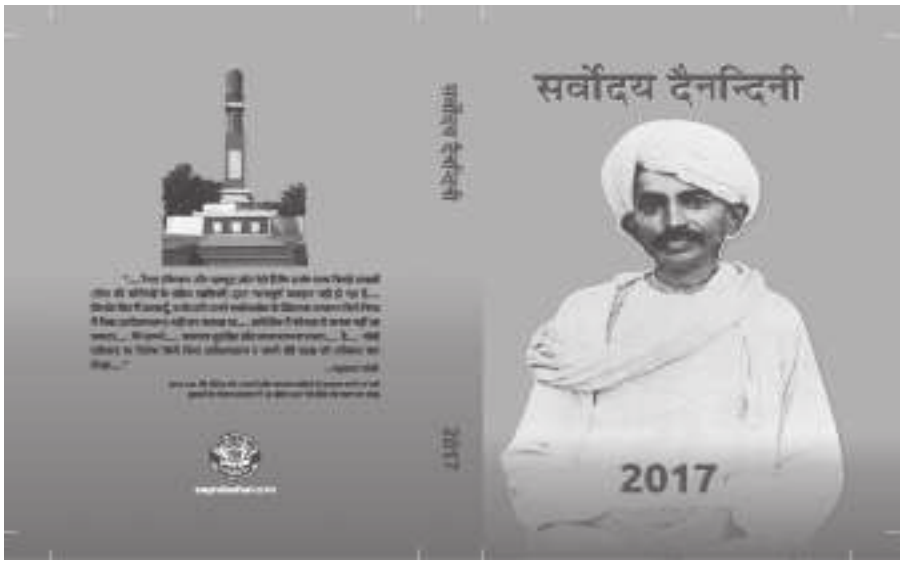

सर्व सेवा संघ प्रकाशन विगत वर्षों की भांति वर्ष 2017 की 'सर्वोदय दैनन्दिनी' प्रकाशित कर चुका है, जिसकी बिक्री गांधी जयंती 2 अक्टूबर से प्रारम्भ कर दी जायेगी।

उल्लेखनीय है कि दैनन्दिनी का प्रकाशन हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में किया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ज्ञानवर्धक व जीवनोपयोगी हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनमोल वचन उद्धृत हैं। कागज, छपाई एवं बाइण्डिंग की दरों में काफी वृद्धि होने के बावजूद भी दैनन्दिनी की कीमत मात्र 150/- रुपये ही है। आवरण पृष्ठ अत्यधिक आकर्षक एवं रोचक है। डायरी में 365 दिनों के लिए 365 पेज हैं, साथ ही प्रत्येक महीने के लिए अलग-अलग प्लानर भी उपलब्ध है। वजन भी इतना कम है कि इसे साथ लेकर चलने में आसानी होगी।

दैनन्दिनी (डायरी) विक्रेता एवं भेंट देने वाले शुभचिन्तकों व सर्वोदय विचार प्रेमी साथियों से अनुरोध है कि शीघ्रातिशीघ्र अपना क्रयादेश सर्व सेवा संघ प्रकाशन को

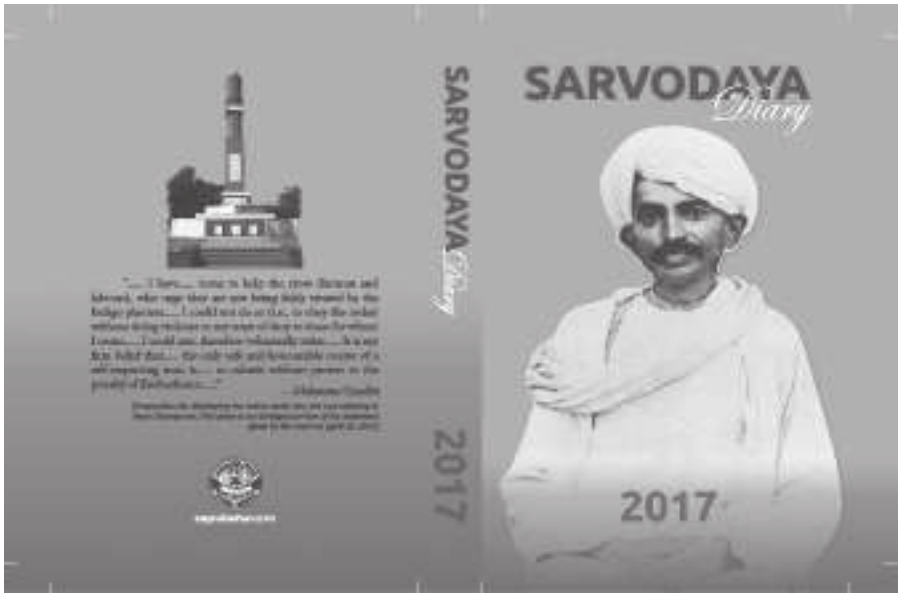

भेजने की कृपा करें, ताकि हम समय से आपको दैनन्दिनी की आपूर्ति कर सकें। पिछले वर्ष देर से क्रयादेश भेजने वालों को हम आपूर्ति नहीं कर पाये थे, जिसका खेद है।

आपूर्ति के नियम

* 5 डायरी से कम मंगाने पर कोई कमीशन देय नहीं होगा, डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
* 6 से 60 डायरी मंगाने पर 25% तथा 61 से 200 डायरी मंगाने पर 30% कमीशन दिया जायेगा। पैकिंग+भाड़ा+ डाकखर्च ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
* 201 से 500 डायरी एक साथ मंगवाने पर 40% कमीशन एवं स्टेशन पहुंच की सुविधा दी जायेगी। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का खर्च 1/2 (आधा) एवं डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
* बिकी हुई डायरी वापस नहीं ली जायेगी।
* डायरी की बिक्री पूर्णतया नकद एवं बैंक के मार्फत होती है।
* आर्डर भिजवाते समय अपना नाम/पता/ मोबाइल नं. और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम स्पष्ट लिखें।
* डायरी का आर्डर भिजवाते समय 25% रकम अग्रिम अवश्य भिजवायें। डिमांड ड्राफ्ट 'सर्व सेवा संघ प्रकाशन' के नाम भेजें।
* रेलगाड़ी की सुविधा नहीं होने पर ट्रांसपोर्ट से पार्सल भेजने के लिए प्रकाशन स्वतंत्र होगा।

नोट : रेलवे के असुविधाजनक नये नियमों के कारण पार्सल ट्रांसपोर्ट से मंगाना बेहतर होगा। **–अरविन्द अंजुम, संयोजक**

कहते हैं उसको जयप्रकाश!

❑ रामधारी सिंह 'दिनकर'

स्वागत है, आओ, काल-सर्प के,
फण पर चढ़ चलने वाले,
स्वागत है, आओ, हवन-कुंड में,
कूद स्वयं जलने वाले।

मुट्ठी में लिए भविष्य देश का,
वाणी में हुंकार लिए,
मन से उतरकर हाथों में,
निज स्वप्नों का संसार लिए।

सेनानी करो प्रयाण अभय,
भावी इतिहास तुम्हारा है,
ने नखत अमां के बुझते हैं,
सारा आकाश तुम्हारा है।

जो कुछ थे निर्गुण, निराकार,
तुम इस द्युति के आकार हुए,
पीकर जो आग पचा डाली,
तुम स्वयं एक अंगार हुए। ❑

बापू की पंखुड़ियां

❑ जगदीश नागपाल 'साधक'

अहिंसा

कभी न झुकना और न किसी से
मरते दम तक डरना,
निज कर्तव्य निभाने पर भी
तनिक न आशा करना,
अर्थ अहिंसा का है–
वैर न लेते हुए किसी से–
ईश्वर के निष्पक्ष न्याय तक
मौन भरोसा करना

सेवा

बीज भूमिगत को ज्यों अमृत
सहसा सिंचित जल है,
आवश्यकता पर सेवा भी वैसा
ही संबल है,
ध्यान रहे हे! लेकिन
बिना आवश्यकता के सेवा–
केवल ढोंग नहीं है साथी।
वह तो निश्चित छल है!

सत्य

परम कर्तव्य निष्ठा से सदा ही
सत्य कहने की
अहिंसक नीति से ही यातनाएं
दुःख सहने की
जरूरत है कि हम निश्चय करें जो भी
उसी के हित
हमें बनानी है
उसी पर अटल रहने की
माना, कागज के फूलों का
रंग हमें छपता है

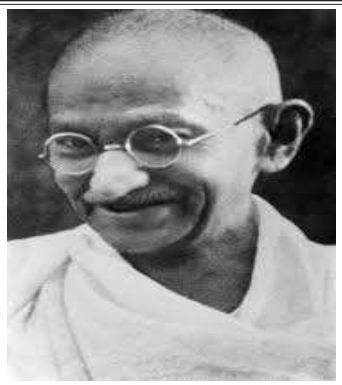

जब गुलाब सम्मुख आता,
वह बिना आग जलता है
सत्य उसी को कहते हैं,
जो दिनकर सा उभरे
जिसकी किरणों से घबराकर
अंधियारा ढलता है।

खादी

सादा जीवन उच्च विचारों
की पहचान यही है,
मानवता के सच्चे सेवक
का परिधान यही है,
भारत में खादी को केवल
खादी ही मत समझो
दीन जनों के हेतु प्रेम का
भव्य निशान यही है।

चरखा

चरखे से कर प्यार
सत्य भी सम्मानित होता है
पूर्ण सत्य भी चरखे में प्रिय!
आभासित होता है
किन्तु मुझे तो मूर्ति सत्य की ही
लगता है चरखा
देखूं इसमें तो ईश्वर का
रूप उदित होता है ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार / कार्यकारी संपादक : अशोक मोती।